

श्री सुभद्रा देवमाला पुस्तकालय

॥ श्री पार्वनाथाय नमः ॥

श्री देवेंद्र शरिरिचित

जयपुर

श्री कमग्रन्थ

हिन्दी अनुवाद

अनुवादक—

श्री लाधूरामजी सुत मेघराज मुणोत

फलोधी (मारगाड) निवासी

प्रकाशक—

श्री मुणोत मेघमाला

खैरागढ (म० प्र०)

प्रवचकर्ता—

भीखमचद मुणोत, खैरागढ राज०

प्रथमावृत्ति १००० वि० स० १९८१

द्वितीयावृत्ति १००० वि० स० २०१७

❀ धन्यवाद ❀

खरतर गच्छ्रीय जैनाचार्य प्रखर वक्ता वीरपुत्र श्रीमद् जिन आनन्द-सागर सूरीश्वरजी म० सा० की आज्ञानुवर्तिनी प्रवर्तिनीजी श्री पुन्यश्रीजी म० की समुदायिनी आर्या श्री हरि श्रीजी महाराज की शिष्या विदुषी आर्या श्री धर्म श्रीजी म० के उपदेश से जिन जिन महानुभावों ने इस ग्रन्थ प्रकाशन हेतु सहायता प्रदान की है उनकी शुभ नामावली—

- २००) श्री० पिस्ताबाई ने अपनी दीक्षा के अवसर पर ।
- २००) श्री० गुलाबचन्दजी मुकनचन्दजी गुलेछा फलोधी वाले ।
- १०१) श्री० गुलाबचन्दजी मुणोत, खैरागढ़ ।
- ५०) अजमेर निवासी बाई फतेकुंवरजी ।
- ५०) श्री० भीखमचन्दजी मुणोत, खैरागढ़ ।
- ४१) एक महासमुन्द निवासी ।
- ३५) श्री० लूनी बाई (श्री मांगीलालजी वछावत) ।

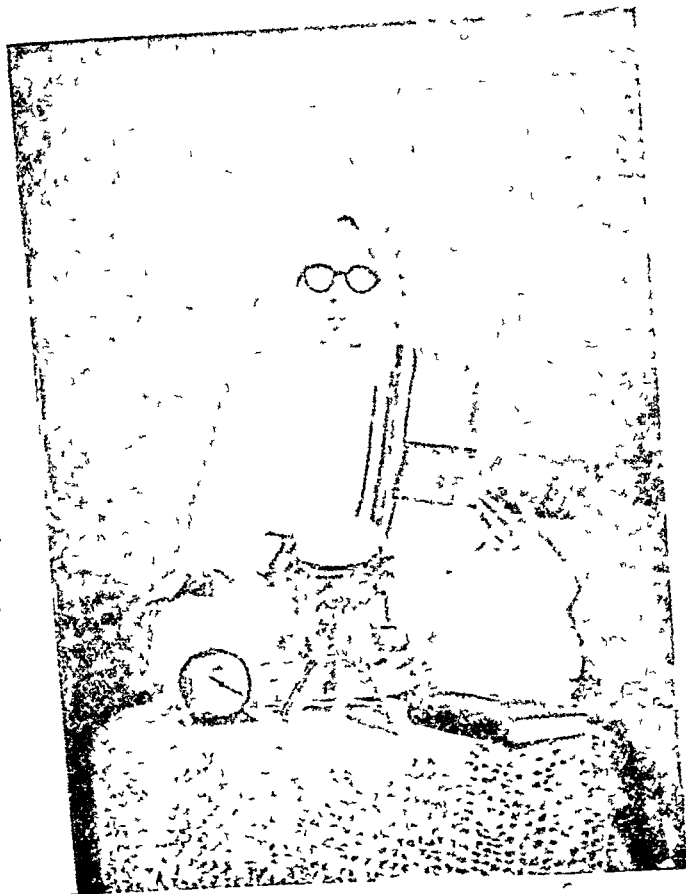
उक्त सब सज्जनों को धन्यवाद है । अन्य सब सज्जनों के लिये यह अनुकरणीय है ।

—प्रकाशक



आर्या श्री धर्मश्री जी म० सा०

खेरागढ़ चातुर्मास २०१४ सं०



जन्म वि० सं० १९५३ (खेरागढ़)

दीक्षा वि० सं० १९७६ (फल्गुदी)

सादर समर्पित

वीतराग मार्गानुगामिनी

महान् तपोनिष्ठ

अनेक गुणालकृत

परम पूज्या

आचार्यरत्न

श्री श्री १००८ श्री

श्री धर्म श्री जी महाराज के

कर कमलों में

सादर समर्पित

लादूराम मेघराज
सैरागढ़ (म० प्र०)

दिनी—
मघराज मुणोत

आर्यारत्न श्री धर्म श्री जी महाराज

[संक्षिप्त जीवर भंकी]

आपका जन्म वि० सं० १९५३ में खैरागढ़ (म० प्र०) में हुआ। आपका संसारो नाम धापू बाई है। पिता का नाम श्री लाधूरामजी गुणोत तथा माता का नाम त्रिजा बाई था। पिता श्री का बाल्यावस्था में ही स्वर्गवास हो गया था।

आपका नाम बड़े धर्मरसयण थी अतः उनकी नेश्राय में रह कर आपका जीवन भी धर्म मार्ग की ओर ही सदा प्रवृत्त रहा। सं० १९६६ में आपका विवाह फतौही निजामो श्री जीवरामजी गेलेश के चतुर्थ पुत्र श्री लालचन्दजी के साथ हुआ किन्तु थोड़े समय पश्चात ही आपका स्वर्गवास हो गया। अन्धावस्था में ही पति वियोग ने आपको विशेष वैराग्यज्ञान बनाया। धर्मोपासन एवं तपानुष्ठान ही आपके जीवन के मुख्य ध्येय बन गये। और अन्ततः खरतरगच्छाय प्रवर्तितोजी श्री पुन्यश्री जी म० की आह्वानवर्तिनी आर्या जी श्री हरि श्रीजी म० की शिष्या रूप में आप सं० १९७६ में फतौही में महा भगवती दीक्षा अंगीकार कर कल्याण मार्ग की ओर प्रवृत्त हुई। आपका नाम धर्मश्री जी रक्खा गया।

आपका था, आर्य धर्मोपासन की ओर विशेष लक्ष्य रक्खा और अल्पकाल में ही जैन तत्व ज्ञान की महा परिष्ठिता के रूप में चहुँदिसि आपका यशोगान होने लगा। मधुर वाणी और गंभीर व्याख्याकार होने से प्रसर वक्त के रूप में भी आप लोकप्रिय बनी और आज मध्यप्रदेश की जैन जनता आपके अमृतोपम उपदेशों का लाभ उठा रही हैं।

हमारे पुण्योदय से सं० २०१४ का आपका चातुर्मास खैरागढ़ हुआ। सं० २०१५ का खरियार रोड, सं० २०१६ का चातुर्मास धमतरी हुआ। धमतरी में चातुर्मास उपरान्त आपके शुभ करकर्मलों से दो बहिनों ने भगवती दीक्षा अंगीकार की इनका नाम पद्म प्रभाश्री जी और जयप्रभा श्री जी रक्खा। मऊ दीक्षा वागवहरा में हुई जिनका नाम पुष्पा श्री जी रक्खा। ये तीनों शिष्याएँ बड़े शान्त स्वभावी महा भाग्यवान हैं।

चर्मनान में आज ७ साध्वी समुदाय के अनुपम सिंवाडे के साथ लोक कल्याण कार्य में निरत रत हैं।

—मेघराज गुणोत, खैरागढ़

प्रस्तावना

संसार में बड़ी विषमता दिखाई देती है। कोई अमीर-कोई गरीब, कोई रुग्ण-कोई कुरूप, कोई विद्वान है तो कोई मूर्ख, कोई कमचोर है तो कोई सजोर। आदि अनेक समस्याओं को समझाने के लिये जैन साहित्यमें कर्मग्रन्थ अपना एक खास स्थान रखता है। यों तो इस विषय पर अन्य धर्मों में कुछ न कुछ वर्णन पाया जाता है कि तु जैन कर्मग्रन्थ में (कर्म साहित्य) इसका जितना सूक्ष्मतम वर्णन पाया जाता है वह अन्य धर्मग्रन्थों में नहीं पाया जाता।

कर्म क्या है, इसका क्या स्वरूप है, कर्म किस तरह आत्मा के साथ ग्रहण होते हैं और फिर किस तरह अलग बिलग हो जाते हैं, कर्म का बनाने वाला कौन है, क्या ये स्वतः ही बनते हैं या कर्म बननेमें किसी की प्रेरणा है, क्या किये हुये कर्मों का फल स्वतः ही कर्म देते हैं, या अन्य कोई देता है, कर्मों का फल किस किस रूप में होता है और उसका आत्मा पर क्या प्रभाव पड़ता है, और ये फल तत्काल ही देते हैं या देर से या फलदान देने का कोई क्रम है। लोक में कर्म रजों का क्या सभी जगह एकसी ही अवस्था है? इस तरह के अनेक प्रश्नों को समझाने के लिये कर्मग्रन्थ में कर्मों की १० मुख्य अवस्थाएँ बताई गई हैं जिन्हें १० कारण भी कहते हैं।

१ धर्म २ उद्वतन, ३ अपवर्तन, ४ सत्ता ५ उदय ६ उदीरणा
७ सक्रम ८ उपपम ९ निघत्ति १० निष्ठापन।

प्रथम भाग—

इसमें १० करणोंपर विचार न कर बंध पर ही मुख्यतया विचार किया गया है और यह बतलाया गया है कि कर्म का स्वरूप क्या है, आत्मा के साथ कर्म किस तरह बंधते हैं, और आत्मा के कौन कौनसे गुणों को कौन कौनसी प्रकृतियां आच्छादित करती हैं, और उनका आत्मा के गुणोंपर क्या प्रभाव पड़ता है। इन बातोंको सरलतासे समझाने के लिये बन्ध के चार भेद प्रथम बतलाये हैं। उसके बाद मूल प्रकृतियां १५८ के नाम बताकर उनका विशेष स्वरूप समझाया गया है।

दूसरा भाग—

दूसरे विभाग में आत्म शक्तियों की क्रमिक विकास अवस्थाओं को लेकर जिन्हें कर्मग्रन्थ में १४ गुणस्थान कहे हैं, उनकी अवस्थाओं का विशेष वर्णन है। और एक सौ अष्टावन प्रकृतियों में से बंध, उदय, उदीरणा और सत्ता पर विचार किया गया है।

बंध—

आत्मा के साथ दूध पानी की तरह मिल जाना बंध है। इसमें एक सौ बीस प्रकृतियों का बंध मान कर कितनी कितनी प्रकृतियों का बंध किस किस स्थान में होता है और उसके न्यूनताधिक होने के कारणों पर विचार किया गया है।

उदय—

शुभाशुभ कर्मों का फल भोगना 'उदय' है। उसमें एक सौ-बाईस प्रकृतियों का उदय मानकर गुण स्थान क्रम से न्यूनताधिक प्रकृतियां समझाई गई हैं।

उदीरणा—

उदय प्राप्त कर्म दलिकों (कर्मों) के साथ प्रयत्न विशेष से खींच कर कर्मों को भोग लेना उदीरणा है। इसमें उदय के समान १२२ प्रकृतियाँ मानकर गुण-स्थान के द्वारा उदय उदीरणा के अंतर पर प्रकाश डाला है।

सत्ता—

कर्मों का अपने स्वरूप को न छोड़कर आत्मा के साथ लगे रहना 'सत्ता' है। इसमें १४८ प्रकृतियों की सत्ता मानकर किस किस गुण स्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता रहती है, यह समझाया गया है।

तीसरा कर्मग्रन्थ—

तीसरे कर्म ग्रन्थ में मूल १४ मार्गणाओं के उत्तर भेद ६२ कहे गये हैं। मार्गणाओं की कल्पना कर्म पटल के तरतम भाव पर जिस तरह गुणस्थान में की गई है, उस पर अवलंबित नहीं है। किन्तु शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक भिन्नतायें जो जीवको घेरी हुई हैं वही मार्गणाओं की कल्पना हैं। अर्थात् जीव के स्वाभाविक वैभाविक रूपों का अनेक प्रकार से पृथक्करण है। मार्गणायें सह भावनी हैं। किन्तु गुण स्थान इससे विपरीत है। इसलिये जीव में एक साथ १४ मार्गणायें किसी न किसी रूप (प्रकार) से पाई जाती हैं। मार्गणाओं के निम्नलिखित मूल भेद १४ और उत्तर भेद ६२ ये हैं। यथा —

(१) मूलभेद—

(१) गति, (२) इन्द्रिय, (३) काया, (४) योग, (५) वेद, (६) कर्माय

(७) ज्ञान, (८) समय, (९) दर्शन, (१०) लेष्या, (११) भव्य, (१२) सम्यकत्व, (१३) सद्भि, (१४) आहार ।

चतुर्थ कर्मग्रन्थ—

चौथे कर्म ग्रन्थ में मुख्यतया तीन विभाग हैं । (१) जीव स्थान, (२) मार्गणा स्थान और (३) गुण स्थान ।

ये सब जीव की अवस्थायें हैं तो भी इनमें परस्पर अन्तर है, इस विषय पर प्रकाश डाला गया है । इसके अलावा ५ भावों का स्वरूप और संख्या का वर्णन भी है ।

[१] जीव विभाग में जीव के १४ भेदों को लेकर पहला गुण स्थान (२) योग, (३) उपयोग, (४) लेश्या, (५) बंध, (६) उदय, (७) उदीरणा, (८) सत्ता इन आठ विषयों पर कर्मबंध की प्रकृतियों पर प्रकाश डाला गया है ।

[२] मार्गणा स्थान में गति इन्द्रिय आदि मार्गणाओं के ६२ भेदों को लेकर (१) जीवस्थान (२) गुण स्थान (३) योग (४) उपयोग (५) लेश्या (६) अल्प बहुत्व इन छः विषयों पर प्रकाश डाला गया है ।

[३] गुणस्थान में—१४ गुण स्थानों को लेकर (१) जीव स्थान (२) योग (३) उपयोग (४) लेश्या (५) बंध हेतु (६) बंध (७) उदय (८) उदीरणा (९) सत्ता इन नौ विषयों का वर्णन है ।

[४] भाव में—५ भावों का स्वरूप और जीवों से भावों की क्या विशेषता है यह बतलाया गया है ।

(१) सन्ध्या—कर्मग्रन्थ में सरया के बितने विभाग हैं और उनकी गिनती सख्याते असख्याते और अन त में किस तरह की गई है इसका गणित बताया गया है ।

पाचवे कर्म ग्रन्थ में १६ अवस्थाओं का वर्णन

(१) ब्रुववधनीय (२) अध्रुववधनीय (३) ब्रुवोदय (४) अध्रुवोदय (५) ध्रुवसत्ता (६) अध्रुवसत्ता (७) सर्गदेशवाती (८) अघाती (९) पुण्य प्रकृति (१०) पाप प्र० (११) परावर्तमान (१२) अपरावतमान (१३) क्षेत्र विपाकी (१४) जीव विपाकी (१५) भाव विपाकी (१६) पुद्गल विपाकी उपरोक्त १६ अवस्थाओं पर किस दृष्टि से और अलग अलग कितना सुगमता से विवेचन किया गया है, यही एक कर्मग्रन्थ को विशेष महत्ता है ।

(१) वध की दृष्टि से १५८ प्रकृतियों में प्रकृतिवध, स्थिति वध, रमवध, और प्रदेश बन्ध इन ४ प्रकार के वधों का स्वरूप बतलाया है ।
(२) प्रकृतिवध में ५ विषयों पर प्रकाश डाला गया है ।

(१) प्रकृति वध का स्वरूप (२) मूल तथा उत्तर प्रकृतियों में भूयस्कार (३) अल्पतर (४) अवस्थित (५) अवकतव्यय धों की सख्या बताई है ।

(३) स्थिति वध में ४ विषयों पर प्रकाश डाला है

(१) स्थिति वध का स्वरूप (२) मूल तथा उत्तर प्रकृतियों की जघन्य और उरकृष्ट स्थिति (३) एकेन्द्रिय आदि जीवों के जघन्य तथा उरकृष्ट स्थिति के प्रमाण निकालने की रीति (४) उरकृष्ट तथा जघन्य स्थिति वध के स्तम्भों का वर्णन ।

(४) अनुभाग बन्ध में ४ विषय हैं—

(१) अनुभागबन्ध का स्वरूप (२) शुभा शुभ प्रकृतियों में तीव्र या मंद रस पडने का कारण (३) शुभा शुभ रमका विशेष स्वरूप (४) उत्कृष्ट तथा जघन्य अनुभावाबन्ध के स्वामियों का वर्णन ।

(५) प्रदेश बन्ध में तीन विषयों का वर्णन है

(१) प्रदेश बन्ध का स्वरूप (२) वर्गणाओं का स्वरूप और उनके अवगाहना (३) बद्ध कर्म दलिकों का मूल तथा उत्तर प्रकृतियों में बटवारा । इस के पश्चात् उपशमश्रेणी और क्षपक श्रेणी का विस्तार से वर्णन करते हुवे ग्रन्थ को परिपूर्ण किया । इस तरह श्रीमद् देवेन्द्रसूरी जी ने कर्मग्रन्थ के अभ्यासियों के लिये संक्षेप में और सारगर्भित विवेचन किया है । उसीको दृष्टि में रखते हुए अनुवादक महोदय ने भी द्वितीय आवृत्ति में भी संक्षेप में ही वर्णन किया है; जो नित्य पाठ्यों के लिये विशेष उपयोगी होगा ।

यों तो इस विषय पर अनेकों विद्वानों ने बड़ी बड़ी गंभीर प्रस्ताव—नाएं लिखी हैं जो विषय को इतनी सूक्ष्मता से स्पर्श करती है कि उनको समझने के लिये उतने ही सूक्ष्म ज्ञान की आवश्यकता है । किन्तु यह अनुवाद जिस दृष्टि कोण से लिखा गया है उसको ध्यान में रखने में भी प्रस्तावना के दो शब्द लिखे हैं ।

फर्म

भीखमचन्द प्रेमचन्द
खैरागढ़-ता० २१-६-६०

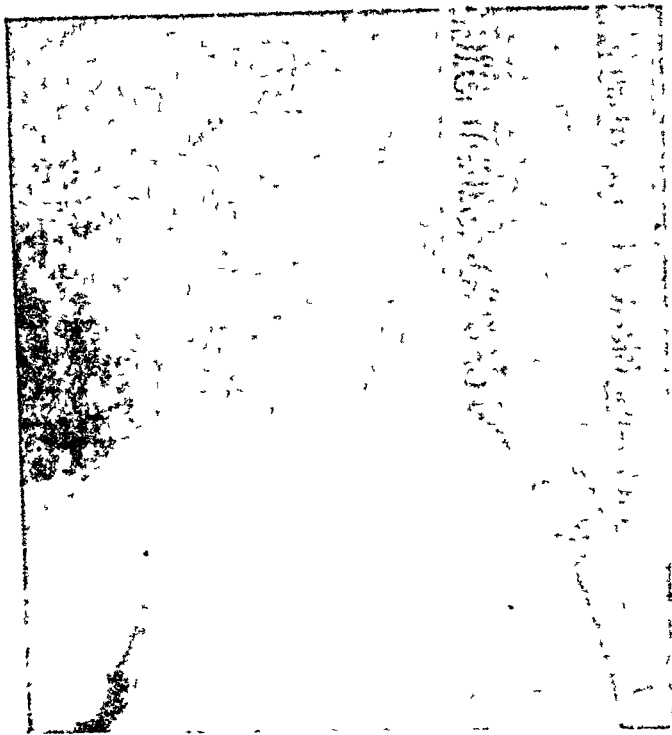
भीखमचन्द मुणोत
खैरागढ़

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	११	मही	नही
५	२६	तृणकीमीका	तृण की मीक
५	१५	मनुक्रम	अनुक्रम
६	१६	सचायण	सचयण
२२	२	तिस	तिसू
२३	१	मिसेणपुन्वीणदय	सय मणु पुन्वीणुदय
२८	१	अपञ्जप	अपञ्जत
३०	१३	गरकादि १६	X
३२	२०	विरताद	देश विरतादि
३४	८	केलदुगि	केवल दुगि
३५	७	जुजाग	उज्जाग
३७		६३	६६
३७		१	१७
४२	१५	७-८-६-५	८-८-६ ५-७
४६	१५	अघञ्जुदर्श	अघञ्जुदर्शन
५०	८	देमे	देसे
५८	३	हारग	दारग
५८	२४	प्रदेश	प्रदेश मध्य में योगकी
५६	१३	सच्यल	सच्यलत्रक

६१	६	३	२
६१	१०	६	५-६
६१	११	२-५	५
६१	१२	२	५-२
६१	१३	५-२	२
६१	१२	अनन्तान्त	अनन्तानन्त
७२	६	सङ्गं	सम्भं
७२	११	लाति	जाति
७२	२२	ध्रुव	नव
७५	५	सहायणिर	सहारणियर
७६	१३	६	६७
८२	१७	सु	न सु
८५	१५	देवता और	देवता
८७	४	सुहुमभर	सुहुमेभर
९१	२	बन्धे	बन्धो
१०१	४	सन्मो	सम्मो
१०६	८	मन	मन हिय

कर्म ग्रन्थ के हिन्दी अनुवादक



श्री मेघराजजी मुणोत खैरागढ़

(जन्म-वि० सं० १६४३ फलौदी)

॥ ॐ श्री पार्वनाथाय नमः ॥

अथश्री

श्रीमद्देवेन्द्रसूरीश्वर विश्विक्त

कर्म विपाक नामा पहला कर्मग्रन्थ

हिन्दी साधुवाद



सिरिबीरजिण वदिय, कम्म विवाग समासओ पुच्छ ।

कीरइ जिण हेउहिं, जेणतो भणए कम्म ॥ १ ॥

पयइ ठिइ रस पएमा, त चउहा मोअगस्स दिठ्ठता ।

मूल पगइइ उत्तर, पगई अडवन्नसय भेय ॥ २ ॥

(मैं) श्री चीर जिनेश्वर का नमस्कार कर सक्षेप से कर्मविपाक

“नामा” ग्रन्थ को कहूंगा। जीवन जिन हेतुओं (मिथ्यात्व

अप्रतयोग कषाय) से प्राप्त किया है ? इस लिये “उसको”

कर्म कहते हैं ॥ १ ॥ वे (कर्म) प्रकृति, स्थिति, रस,

प्रदेश से मोदक के दृष्टा त से चार (प्रकार) हैं। मूल प्रकृति

आठ (और) उत्तर प्रकृति एकदो अठावन भेद हैं ॥ २ ॥

इह नाण दंसणावरण, वेय मोहाउ नाम गोयाणि ।
 विग्घं च पण नव दु अट्ठवीस चउ तिसय दुपण विहं ॥ ३ ॥
 मह सुय ओही मण केवलाणि नाणाणि तत्थ मइनाणं ।
 वंजणावरणह चउहा मण नयण विणिदिय चउक्का ॥ ४ ॥
 अत्थुगगह ईहावाय धारणा करण माणसेहिं छहा ।
 इय अठवीस भेयं चउदसहा वीसहा व सुयं ॥ ५ ॥
 अक्खर सन्नी समं साइअं खलु मपज्जवसियं च ।
 गमियं अंगपविट्ठं सत्तवि एए सपडिवक्खा ॥ ६ ॥

यहां ज्ञाना (वरणीय) दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय (क्रमशः) पांच, नव, दो, अठावीस, चार, एकसौ तीन, दो (और) पांच भेद हैं ॥ ३ ॥ ज्ञान (पांच है) मति, श्रुति, अवधि, मन पर्यव (और) केवल । जिस में मति ज्ञान^२ मन, आंख विना चार इन्द्रियां आश्रय व्यंजनावग्रह^३ चार प्रकार हैं ॥ ४ ॥ अर्थावग्रह^४, ईहा^५, अपाय और धारणा (ये प्रत्येक) इन्द्रिय (और) मन सहित छः प्रकार है । यह अठावीस भेद (मतिज्ञान के) श्रुतज्ञान के चौदह या वीस भेद है ॥ ५ ॥ अनन्तरश्रुत, सन्नीश्रुत, सम्यकश्रुत, सादिश्रुत और सपर्यवसितश्रुत, गमिकश्रुत, अंग प्रविष्टश्रुत ये सातों प्रतिपत्ति^६ सहित (गणनेसे चौदह भेद श्रुतज्ञान) ॥ ६ ॥

२ मतिज्ञान अठावीस प्रकार के हैं ॥ ३ इन्द्रियो द्वारा पदार्थ का स्पर्श हो के अव्यक्त अवबोध, ४ पदार्थ को सामान्यपने जानना, ५ विचारणा, ६ अनन्तर, असन्नी, असम्यक, अनादि, अपर्यव० अंग० अंगवाह्य ।

पञ्चय अक्षर पय सघाया पडिवत्ति तहय अणुओगो ।
 पाहुड पाहुडपाहुड वत्थु पुब्बाय स समासा ॥ ७ ॥
 अणुगामि वढद्माणय पडिवाइयरविहा छहा ओही ।
 रिउमड विउलमइ मणनाण केवल मिगविहाण ॥ ८ ॥
 एसि ज आवरण पडुव्व चक्खुस्स त तथा वरण ।
 दसण चउ पणनिहा वित्तिसम दसणावरण ॥ ९ ॥
 चक्खु दिट्ठि अचक्खु सेसिंदिय ओहि केवलेहिं च ।
 दसण मिह सामन्न तस्सावरण तय चउहा ॥ १० ॥

पर्यायश्रुत, अक्षरश्रुत, पदश्रुत, सघातश्रुत, प्रतिपत्तिश्रुत, उसी तरह अनुयोगश्रुत, प्राभतश्रुत, प्राभूतप्राभूतश्रुत, वस्तुश्रुत, और पूर्वश्रुत (ये दस भेद) समास सहित (प्रत्येक शब्द के साथ समास शब्द जोड़नेसे षोडश भेद श्रुत के होते हैं) ॥ ७ ॥ अनुगामि, वर्धमान, प्रतिपाति । इतर भेद (अनानुगामि, वर्धमान, अप्रतिपाति, गणने से) छ प्रकार अवधिज्ञान है । अनुमति विपुल मति, (दो भेद) मन पर्यवज्ञान है । (और) केवल ज्ञान एक प्रकार है ॥ ८ ॥ इन (मति आदि पाच ज्ञानों) का जो आकार को पट्टा समान आवरण है उस (आवरण) को ज्ञानावरणीय कहते हैं । दर्शनावरणीय चार, निद्रा पाच (यह नौ) पहरेदार के समान दर्शनावरणीय कर्म है ॥ ९ ॥ चक्षु दर्शन, शेष इन्द्रिय द्वारा अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन, केवल दर्शन, यह सामान्य (उपयोग) हैं इसके आवरण को चार प्रकार का दर्शनावरणीय कहते हैं ॥ १० ॥

सुहृद्विबोहा निदा निदानिदाय दुखस्य पद्विबोहा ।
 पयला ठिञ्चोव विद्वस्स पयल पयलाय चंक्रमओ ॥११॥
 दिणचिन्ति यत्थकरणी थीणद्धी अद्धचकी अद्धवला ।
 महु लिच्च खग्गधारा लिहणं व दुहाउ वेयणियं ॥१२॥
 ओसन्नं सुर मणुए सायमसायं तु तिरिय निरणसु ।
 मज्जं व मोहणीयं दुविहं दंसण चरण मोहा ॥१३॥
 दंसण मोहं तिविहं सम्भं मीसं तहेव मिच्छत्तं
 सुद्ध अद्धविसुद्धं अविमुद्धं तं हवइ कमसो ॥१४॥
 जिय अजिय पुण्ण पावासव संवर वंध मुक्ख निज्जरणा ।
 जेणं सदहइ तयं सम्भं खयंगाइ बहु भेयं ॥१५॥

सुखसे जागना (वह) निद्रा, दुःखः से जागना (वह) निद्रा निद्रा, खड़े
 २ बैठे २ प्रचला, चलते फिरते प्रचला प्रचला ॥११॥ दिन के मोचे हुए
 कार्य को करने वाली (निद्रा) थीणद्धी कहलाती है (इस निद्रावाले का
 बल) वासु देव के बल से आधा होता है मधुलिप्त खंगधारा को चाटने
 के समान दोप्रकार का वेदनी कर्म है ॥१२॥ प्रायः देव (और) मनुष्यमें
 साता (वेदनीका उदय) तिर्यच (और) नरक मेंसाता (वेदनीका उदय)
 है ॥ मदिरा के समान मोहनीय दो प्रकारका (यथा) दर्शन मोहनीय(और)
 चारित्र मोहनीय है. ॥१३॥ दर्शन मोहनीय “कर्म” तीनप्रकार है “यथा”
 सम्यक्त्व मोहनीय; मिश्र मोहनीय, इसीतरह मिथ्यात्व मोहनीय वे
 तीनों क्रमशः शुद्ध, अद्ध, विशुद्ध और अशुद्ध होता है ॥१४॥ जिससे जीव
 अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, वंध, मोक्ष “और” निर्जरा (इन नव
 तत्वोंकी श्रद्धाहो वह सत्त्वत्व मोहनीय क्षायिकादि बहुत भेदसे हैं ॥१५॥

मीसा न राग दोसो जिणधम्मो अतमुहु जहा अन्ने ।
 नारियल दीव मणुणो मिच्छ जिण धम्म विवरीय ॥१६॥
 सोलसकसाय नव नोकसाय दुग्धि चरित मोहणिय ।
 अण अप्पच्चक्खाणापच्चक्खाणाय सजलना ॥ १७ ॥
 जा जीव वरिस चउमास पक्खगा नरय तिरिय नर अमरा ।
 सम्मा णु सव्वविरई अहराय चरित धायकरा ॥ १८ ॥
 जल रेणु पुढवि पव्वय राईसरिसो चउव्विहो कोहो ।
 तिणि सलया कट्ट द्विअ सेलत्थ भोवमो माणो ॥ १९ ॥

मिथमोहनीय "के उदयसे" जैन धर्मके विषय रागद्वेष नहीं होता जैसे नारियल द्वीप के मनुष्यों को अन्न के विषय "राग द्वेष नहीं होता" (इसका उदय) अन्तर मुहूर्त है, (और) जिनधर्म से विपरीत को मिथ्यात्व मोहनीय कहते हैं ॥ १६ ॥ सोलह कषाय (और) नवनों कषाय ऐसे दो प्रकार से चारित्र मोहनीय है। सोलह कषाय बताते हैं । अनंतानुबधी^४ अप्रत्याख्यानी,^४ प्रत्याख्यानी^४ और सञ्जल^४ ॥ १७ ॥ (वे ० मनुक्रम से) यावज्जीव, वर्ष, चतुर्मास (और) पक्ष (रहते हैं) नारकी, तिर्यच, मनुष्य "और" देवगति (के कारण हैं) और" सम्यक्त्व, देश विरती, सर्व विरती "और" यथाऽयात चारीत्र क घात करने वाले हैं ॥ १८ ॥ जल, रेती, पृथ्वी और- पर्वत की रेखा समान चार प्रकारका क्रोध है तृण कीसीका काष्ठ, अरिय और पत्थर के स्तम्भ (सदृश) मान है, ॥१९॥

१ अनंतानुबधी क्रोध, अनु० मान, अनु० माया, अनु लोभ, एव अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और सञ्जल प्रत्येक के चार २ भेद गणनेसे सोलह भेद अनंतानु० अप्रत्या० प्रत्या० सञ्जल,

माया बलेहि गोमुत्ति मिंढसिंग घणवंसि मूल सामा ।
 लोढो हलिद्द खंजण कद्दम किमिराग सारिच्छो ॥२०॥
 जस्सुदया होइ जिए हास रई अरइ सोग भय कुच्छा ।
 सनिमित्त मन्नहा वा तं इह हासाइ मोहणियं ॥ २१ ॥
 पुरिसित्थि तदुभयं पइ अहिलासो जव्वसा हवइ सोउ ।
 थी नर नपु वेउदओ फुंफुम तण नगर दाहसमो ॥२२॥
 सुर नर तिरि निरयाऊ हडिसरिसं नामकम्म चित्ति समं ।
 बायाल तिनवइ विहं तिउत्तरसयंच सत्तट्ठी ॥ २३ ॥

वांस की छाल , वैल की मूत्रधारा , मेंढे का सिंग और कठिन
 वांस की जडके समान माया है और लोभ हरिद्र, खंजन कर्दम (और)
 किरमचीरग के समान है ॥ २० ॥ जिसके उदय से जीव को हास्य,
 रति, अरति, शोक, भय (और) जुगुप्सा कारणवश अथवा अन्यथा बिना
 कारण होती है उसको यहां हास्यादि मोहनीय कर्म कहते हैं. ॥ २१ ॥
 जिसके प्रभाव से पुरुष स्त्रीय तथा पुरुष स्त्री दोनों के प्रति अभिलाषा
 याने मैथुन की अभिलाषा होती हैं वह स्त्री, पुरुष (और) नपुमंक वेद
 का उदय है (और क्रमशः) कंडे को (अग्नि) तृण की (अग्नि) और नगर
 दाह के समान है ॥२२॥ देवायुः, मनुष्यायुः, तिर्यचायु (और) नरकायुः
 वेदी के समान है ॥ नाम कर्म चित्तारे के समान है । (वह) वयालीस
 तीरानवे, एकसौ तीन (और) सडसट प्रकार का है ॥ २३ ॥

गङ्गाइतणु उवगा वथण सघायणाणि सघायणा ।
 मठाण वण गध रस फास अणुअन्वि विहगगई ॥२४॥
 पिहपयडिचि चउदस परघा उसाम आयवुज्जोय ।
 अगुरुलहु तित्थ निमिणो वघाय मियअह पत्तेया ॥२५॥
 तस वायर पव्वत्त पत्तेय थिर सुभ च मुमग च ।
 सुसरा इज्ज जस तस दसग थावर दम तु इम ॥२६॥
 थावर सुहम अपव्वज साहारण अथिर असुभ दुमगाणि ।
 दुस्सर णाइज्जा जस मियनामे सेयरा विस ॥ २७ ॥
 तस चउ थिर छक्कं अथिर छक्क सुहमतिग थावर चउक्क ।
 सुभगति गाइ विभासा तयाड सराहिं पयडीहि ॥२८॥

गति, जाति, तनु, उपाग पचन, सघातन, सघयण, सस्थान, घर्ण,
 गघ, रस, स्पर्श, आयुपूर्वी (और) विद्यायोगति ॥ २४ ॥ (यह) चौदह
 पिह प्रकृतिया है ॥ पराघात, उच्छ्रवास, आतप, उद्योत, अगुरुलघु, तीर्थ
 कर निर्माण (और) उपघात यह आठ प्रत्येक प्रकृति है ॥ २५ ॥ अस,
 वादर, पर्याप्ता, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सौभाग्य, सुस्वर, आदेय और यश
 किति (यह) अस दशक (बहलाती) है "और" स्थावर दशकयह है ॥२६
 स्थावर, सुदम, अपर्याप्ता, साधारण, अस्थिर अशुभ, दौर्भाग्य, दु स्वर
 अनादेय (और) अयश किति यह नाम कम की इतर सहित बीस प्रकृ
 तिया हुई ॥ २७ ॥ (अब इन प्रकृतिया का मन्त्रोप मे कथन करने के
 लिये संकेत मन्त्रा बताते हैं) असचतुष्प, स्थिरद्वक, अस्थिरद्वक, सुदम
 त्रिक, स्थावरचतुष्प और सौभाग्यत्रिक आदि संकेत हैं, इसकी आदि से
 संख्या के अन्त तक की प्रकृतिया समझ लेनी ॥ २८ ॥

वणचउ अगुरुलहु चउ तसाइदुतिचउरछक्कमिच्चाई ।
 इय अन्नावि विभासा तयाइसंखाहिपयडीहिं ॥२९॥
 गइयाईण उ कमसो चउ पण पण ति पण पंच छ छक्कं ।
 पण दुग पण ट चउ दुग इय उत्तरभेय पण सट्टी ॥३०॥
 अडवीस जुआ तिनवइ संते वा पनरबंधणे तिसयं ।
 बंधण सघाय गहो तणूसु सामन्नवणणचऊ ॥३१॥
 इय सतटी बंधोदणय नय सम्म मीसया बन्धे ।
 बन्धु दए सत्ताए वीस दुवीसट्ट वन्नसयं ॥३२॥

वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, त्रसादि द्विक; त्रिक, चतुष्क, (और)
 छक इत्यादि ॥ इसके सिवाय और भी विभाषा आदि प्रकृति से संख्या के
 अन्त तक की प्रकृति समझ लेनी ॥२६॥ गात आदि तो अनुक्रम से
 चार, पांच, पांच, तीन, पांच, पांच, छे, छे, पांच, दो, पांच, आठ, चार
 (और) दो इस तरह उत्तर भेद पैंसठ हुवे ॥३०॥ (पूर्वोक्त) अट्ठावीस
 (और पैंसठ प्रकृति) को जोड़ देनेसे तेरानवे (प्रकृति) सत्ता में. अथवा
 (तेरानवे में) पन्द्रह वधनकी याने पांचके बदले पन्द्रह मिलानेसे एकसौ
 तीन प्रकृति सत्ता में होती है ॥ शरीर में अर्थात् शरीर के ग्रहणसे वधन
 सघातन ग्रहण हां जाता है सामान्य वर्ण चतुष्क का भी ग्रहण होता है
 ॥३१॥ यह सडसठ प्रकृति वध, उदय, उदीर्णा की (अपेक्षा समझनी)
 सम्यक्त्व मोहनी मिश्रमोहनी बन्धमें नहीं (ली जाती) वंध.उदय सत्ता में
 (अनुक्रम से) एक सौ बीस, एक सौ बाईस, एक सौ अठान (प्रकृति
 होती है) ॥ ३२ ॥

निरयतिरिनरसुरगई इगवियतियचउपणिदिजाईओ ।

ओराल विउन्वा हारग तेय कम्मण पण सरीरा ॥३३॥

बाहु रु पिट्टि सिर उर उय रग उवग अगुली पमुहा ।

सेसा अगो वगा पढम तणु तिगस्सु वगाणि ॥३४॥

उरलाइ पुग्गलाण निवद्ध वज्झ तयाण भव ध ।

ज कुणइ जउ सम तं व धण मुरलाई तणुनामा ॥३५॥

ज सघाइ उरलाइ पुग्गले तणगण व दताली ।

त सघायं व धणमिव तणुनामेण पचविह ॥३६॥

नारकी तिर्यच मनुष्य और देव(यह चार) गति एके-द्री, द्वि० त्री० चतु० और पचे-द्री (यह पाच) जाति और औदारिक वैक्रिय, आहारक, तैजस (और) कार्मण (यह) पाच शरीर कहलाते हैं ॥३३॥ मुजा, जघा पीठ, सिर, छाती, (और) पेट यह अग है (और) अगुली प्रमुख उपाग कहलाती है शेष अगोपाग पहले के तीन शरीर में होते हैं ॥३४॥ जो (कर्म) लाखके समान पहिले बाधे हुए वर्तमानमें बाधते हुए औदारिकादि पुद्गलों का (आपस में) सम्बन्ध करता है उसको औदारिकादि बधन (पाच) शरीर के नाम से (पाच प्रकार है) ॥३५॥ दतालीके प्रण समुह के (समान) जो औदारिकादि (शरीर के) पुद्गलों को इकट्ठा करता है वह सघातन (नाम कर्म) है यह बधन नाम कर्म की तरह शरीर नामकी अपेक्षा पाच प्रकार है ॥३६॥

औराल विउव्वा हारयाणं सग तेअ कन्म जुत्ताणं ।
 नववंधणाणि इअर दु सहिआणि तिन्नी तेसिं च ॥३७॥
 संघयणमड्डिनिचओ तं छद्दा वज्जरिसहनारायं ।
 तहय रिसहंनारायं नारायं अद्धनारायं ॥ ३८ ॥
 कीलिय छेवट्टं इह रिसहो पट्टो कीलिआवज्जं ।
 उभओमकडवंधो नारायं इमुरालंगे ॥ ३९ ॥
 समचउरंसं निग्गोह साइ खुज्जाइ वामणं हुंडं ।
 संठाणा वणणा किरह नील लोहिय हलिद सिआ ॥४०॥

अपने अपने तेजस कर्मण सयुक्त औदारिक, वैक्रिय, आहारक के
 नव बन्धन^१ होते हैं ॥ इतर तेजस कर्मण दोनों के सयोग से तीन २
 (बन्धन) और तेजस कर्मण स्व की अपेक्षा तीन^३ बन्धन ॥ ३७ ॥
 हाडों की रचनाको संहनन कहते हैं ॥ छे प्रकार हैं वज्रऋषभनाराच उसी
 तरह ऋषभ नाराच, नाराच, अर्द्ध नाराच, कीलिका और छेवट्ट ॥ यहां
 ऋषभका अर्थ पट्ट है और कीलिका का अर्थ खीला है ॥ नाराच का अर्थ
 दोनों तरफ मर्कट बंध है यह औदारिक से होता है ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥
 समचतुरस्र न्यग्रोध, सादि कूब्ज वामन और हुंडक यह संस्थान है ॥ कृष्ण
 नील, लाल, पीला और श्वेत यह वर्ण है ॥ ४० ॥

१ औदारिक औदारिक बंधन २ औदारिक तेजस बंधन ३ औदारिक
 कर्मण बन्धन ४ एव वैक्रिय और आहारक के भी तीन तीन भेद होने से
 नौ भेद २ औदारिक तेजस कर्मण बंधन, वैक्रिय तेजस कर्मण बंधन,
 आहारक तेजस कर्मण बन्धन यह तीन ३ तेजस तेजस बंधन, तेजस
 कर्मण बन्धन, कर्मण कर्मण बंधन यह तीन एवं सर्व पन्द्रह बंधन हैं ।

सुरहि दुरही रसा पण तित्त कड्ड कसाय अचिला मधुरा ।
 फासा गुरुलहु मिउ खर सी उण्ह सिणिद्ध रुकद्धा ॥४१॥
 नील कसिण दुगध तित्त कड्डअ गुरु खर रुक ।
 सीअ च असुह नवग इक्कार सग सुभ सेस ॥४२॥
 चउहगड्ढणुपुब्बी गइपुब्धि दुग तिग निश्चाउ जुअ ।
 पुब्बीउदओो वक्के सुह असुह वसुह विहग्गड्ढ ॥४३॥
 परघा उदया पाणी परेसि बलिणपि होइ दुद्धरिसो ।
 ऊससिण लद्धिजुत्तो हवेइ ऊसास नाम वसा ॥ ४४ ॥
 रविर्विवेउ नि अ ग तावजुअ आयवाउ नउजलणे ।
 जमुसिण फासस्स तहि लोहिय उण्णस्स उदउति ॥४५॥

सुरभि, दुरभि, (दागध) तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल और मधुरस
 पाच रस हैं (और) स्पर्श (आठहै) गुरु, लघु, मृदु, खर, शीत उष्ण
 स्निग्ध (और) रुक्ष है ॥ ४१ ॥ नील, कृष्ण, दुरभिगध, तिक्त, कटु
 गुरु, खर, रुक्ष और शीत (यह) नौअशुभ नवक हैं शेष ग्यारह प्रकृति
 शुभ है ॥ ४२ ॥ चारगति के (समान) आनुपूर्वीभी (चार) है ॥ गति
 और आनुपूर्वी (गति) द्विक (कहलाती) है अपनी अपनी आयुष्य युक्त
 होने से गति त्रिक (कहलाती) है आनुपूर्वी का उदय वक्र गति में होता
 है शुभ और अशुभ विहायोगति (दो प्रकार है) वैल (और) ऊ टवत्
 ॥४३॥ पराघात के उदयसे प्राणी दूसरे बलवान को भी अजय होता है
 उच्छ्वास नाम कर्म के उदयसे उच्छ्वास लब्धिसयुक्त होता है ॥४४॥
 सूर्य मंडल के विषय में (रत्नादि पृथ्वी काय) जीवों का शरीर तापयुक्त
 होता है (उसको) आतप नाम का उदय है तत्र अग्निकाय में उष्ण
 स्पर्श और रक्तवर्ण का उदय है ॥ ४५ ॥

अणुसिण पयासरुवं जिअंगमुज्जो अण इहुज्जोआ ।
 जह देवुत्तर विक्किय जोइस खच्चोअ माह्व ॥ ४६ ॥
 अगं नगुरु नलहुअं जायइ जीवस्स अगरुलहु उदया ।
 तित्थेण तिहुअणस्सवि पुज्जो से उदओ केवलियो ॥ ४७ ॥
 अंगो वंग निअमणं निम्माणं कुणइ सुत्तहार समं ।
 उवघाया उवहम्मइ सतणु अवयव लंघिगाईहिं ॥ ४८ ॥
 वि ति चउ पणिदिअ तस्सा वायराओ वायरा जिआ थूला ।
 निअनिअ पज्जति जुआ पज्जत्ता लद्धि करणेहिं ॥ ४९ ॥

यहां उद्योत (नाम कर्मके उदयमे) जीवोंका शरीर शीत प्रकाशरूप उद्योत करता है (यथा) साधु, देवता के उत्तर वैक्रिय, ज्योतिषी और खद्योत-जुगनी कीड़े की तरह ॥ ४६ ॥ अगुरु लघु (कर्म) के उदयसे जीवका शरीर न गुरु, न लघु होता है तीर्थकर त्रिभुवनके भी पूज्य होते हैं । इसका उदय केवली को ही होता है ॥ ४७ ॥ सूत्रधार के समान निर्माण (नामकर्म) अंगोपांगों को नियमित याने योग्य स्थान व्यवस्थापन करता है, उपघात (नाम कर्म के उदयसे) अपने शरीर के अवयवपह जीभादिसे उपहत होता है ॥ ४८ ॥ त्रस (नाम कर्म के उदय) से द्विन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय होता है, (वादर नाम कर्म के उदयसे) अपनी, अपनी पर्याप्तियां संयुक्त होती हैं, (वे पर्याप्त जीव) लब्धी और करण दो^१ प्रकारसे हैं, ॥ ४९ ॥

१ जो जीव स्वयोग्य पर्याप्ति पूर्ण करके मरता है वह लब्धी पर्याप्ताअन्यथा मरे वह लब्धी अपर्याप्ता । करणपर्याप्ता इन्द्रिय पर्याप्ता को कहते है । जिसने आहार, शरीर, इन्द्रिय पर्याप्ति पूरी करी है वह करण पर्याप्ता । जिसनेपूरी नहीं की है आगे करेगा वह करण अपर्याप्ता ।

पत्ते अवलुपत्ते उदण्य दन्त अट्टिमाइ यिर ।

नाभुवरि सिराइ सुह सुभगाओ सव्वजण इट्ठो ॥ ५० ॥

सुमरा महुर सुहकुणी आइज्जा सव्वलोअगिज्कपओ ।

जसओ जसकिचीओ थाररदसग विवज्जत्थ ॥ ५१ ॥

गोअ दुहुच्चनीअ कुलाल इव सुघड भु सलाईअ ।

विग्घ दाणे लाभे भोगुवभोगेसु वीरिए अ ॥ ५२ ॥

सिरि हरियसम एय जह पडिक्कुलेण तेण रायाई ।

न कुणइ दाणाईय एव विग्घेण जीवोवि ॥ ५३ ॥

प्रत्येक नामकर्म के उदयसे शरीर घृण्यपुण्य होता है, दात दह्दहो आदि स्थिर होते हैं उसे स्थिर नाम कहते हैं, नामि उपर (अत्रयय) शुभ होते है (उसको) गुम नाम कहते है। सौभाग्य नाम कर्मके उदयमे सब लोगों को ईष्ट लगता है ॥ ५० ॥ सुखर (नाम कर्मसे) मधुर ध्वनि शानी है, आदेय (नाम कर्मसे) सब लोग यचनका आश्र फरते हैं। यश कीर्ति (नाम कर्म के उदय) से यश कीर्ति हाती है। स्वावर दशक इमसे (नामसे) विपरीत (अर्थ) वाला है ॥ ५१ ॥ गोत्र कर्म का प्रकारका द ऊच और नीच जैसे नु भार के बनाये अन्धे घट और मधु घट के समान। अतराय (कर्म पाष प्रकार है) दात, लाभ, भाग, उपमाग और धीर्य ॥ ५२ ॥ यद (अतराय कर्म) (भटारी के समान है जैसे भटारी प्रतिपूज होने से राजादि दात वगैरह नदी पर मकने इना प्रपात अतराय कर्म के कारण जीव भी दान नहीं कर सकता ॥ ५३ ॥

पडिणीयत्तण निन्हव उवघाय पओस अंतराएणं ।

अच्चा सायणयाए आवरण दुग जिओ जयइ ॥५४॥

गुरुभत्ति खंति करुणा वय जोग कसाय विजय दाणजुओ ।

दृढ धम्माइ अज्जइ सायम सायं विवज्जयओ ॥५५॥

उम्मग्ग देसणा मग्ग नासणा देव दब्ब हरण्णेहिं ।

दन्सण मोहं जिण मुणि चेइय संघाइ पडिणीओ ॥५६॥

दुविहंपि चरण मोहं कसाय हासाई विसय विवसमणो ।

बंधइ नरयाउ महारंभ परिग्गहरओ रुदो ॥५७॥

प्रत्यनीकत्व-अनिष्टा चार, अपलाप, विनाश, प्रद्वेष, अन्तराय और अति आशातना से जीव आवरण दुग ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय कर्म उपार्जन करता है ॥ ५४ ॥ गुरु भक्ति, क्षमा, करुणा, व्रत, योग, कषाय का विजय, दान युक्त और दृढ़ धर्मादि से साता वेदनी को उपार्जन करता है और विपरीत पने से असाता वेदनी को उपार्जन करता है ॥ ५६ ॥ उनमार्ग का उपदेश, सत् मार्ग का विनाश और देव द्रव्य हरण से दर्शन मोहनीय कर्म बांधता है (तथा) जिन, मुनि, चैत्य और संघ के प्रत्यनीक पनेसे भी दर्शन मोहनीय कर्म बांधता है ॥ ५० ॥ दोनों प्रकार के चारित्र मोहनीय कर्म कषाय हास्यादि विषय के विवस होने से भी बांधता है महारम्भ परिग्रह में रक्त और रौद्र परिणाम से नरकायु बांधता है ॥ ५७ ॥

तिरियाउ गूढहियओ सढो समन्लो तढा मणुस्साउ ।
 पयईइ तणु ऋसाओ दाणरुई मज्झिम गुणोअ ॥५८॥
 अविरयमाइ सुराउ बालतओ काम निज्जरो जयइ ।
 सरलो अगार विल्लो सुहनाम अन्नहा असुइ ॥५९॥
 गुणपेही मयरहिओ अज्झयणज्झावणा रुइ निच्च ।
 पकुण्ड जिणाइ भत्तो उच्च यय डयरहाउ ॥ ६०॥
 जिणपूयाविग्घकरो हिसाइ परायणो जयइ निग्घ ।
 इय कम्मविवागो य लिहिओ देविन्द सूरिहिं ॥६१॥

गुढ हृदय, शठ और सशल्य वाला तिर्यंचायु बाधे, तथा प्रकृति से
 अरप कपार्या, दान रुचि और मध्यम गुण वाला मनु
 स्यायु बाधे ॥ ५८ ॥ बालतप अकाम निज्जरा अविरतादि से
 देवाय उपाजन करता है, सरल गौरव रहित पनेसे शुभ
 नामकर्म बाधता है। अथवा इससे विपरीत अशुभ नाम
 कर्म बाधता है ॥ ५९ ॥ गुण देखने वाला, मद रहित, पढ़ने
 पढाने मःनिरतर रुचि वाला जिनेश्वरादि का भक्त उच्चगात्र
 बाधे ॥६०॥ जिनै-द्र को पूजा में विघ्न करनेवाला हिसादि में
 तत्पर अ तराय कर्म उपाजन करे, इस तरह यह कर्म विपाक
 नामा प्रथ श्री देव-त्रसुरिजी ने लिखा है ॥ ६१ ॥ इति ॥

कर्मोंकी मूल प्रकृति ८ उत्तर १५८ के नाम

मूल प्र० ८	वेदनीय २	१७	॥ मान
१ ज्ञानवर्णीय कर्म	१ सातावेदनीय	१८	॥ माया
२ दर्शनावर्णीय कर्म	२ असातावे०	१९	॥ लोभ
३ वेदनीय कर्म		२०	हास्य
४ मोहनीय कर्म	मोहनीय २८	२१	रति
५ आयु कर्म	१ सम्यक्त्व	२२	अरति
६ नाम कर्म	२ मिश्र	२३	शोक
७ गोत्र कर्म	३ मिथ्यात्व	२४	भय
८ अन्तराय कर्म	४ अनन्तानुबंधी	२५	जुगुप्सा
ज्ञानवर्णीय ५	क्रोध	२६	पुरुषवेद
१ मति ज्ञानवर्णीय	५ अनन्तानुबंधी	२७	स्त्रीवेद
२ श्रुत ज्ञाना०	मान	२८	नकुं सकवेद
३ अवधि ज्ञाना०	६ ॥ माया		आयुष्य ४
४ मनःपर्यवज्ञा०	७ ॥ लोभ		
५ केवल ज्ञाना०	८ अप्रत्याख्यानी		
	क्रोध		
दर्शनावर्णीय ६	६ ॥ मान	१	देवायुः
१ चक्षु दर्शनाव०	१० ॥ माया	२	मनुष्यायुः
२ अचक्षु दर्शना०	११ लोभ	३	तिर्यचायुः
३ अवधि दर्श०	१२ प्रत्याख्यानी	४	नरकायुः
४ केवल दर्शना०	क्रोध		नामकर्म १०३
५ निद्रा	१३ ॥ मान	१	नरकगति
६ निद्रानिद्रा	१४ ॥ माया	२	तिर्यचगति
७ प्रचला	१५ ॥ लोभ	३	मनुष्यगति
८ प्रचला प्रचला	१६ संव्वलन	४	देवगति
६ थण्डी	क्रोध	५	एकेन्द्रियजाति
		६	द्वीन्द्रियजाति

दर्शन
मोहनीयमोहनीय
आलस्य कषाय चारित्र मोहनीय

नवनीकषाय।

गति ४

७ त्रीन्द्रियजाति	३० का० का० वधन	५७ तिक्त	रस
८ चतुरिन्द्रिय	३३ औदारिक सघातन	५८ कटु	"
९ पचेन्द्रिय	३४ वैक्रिय	५९ कषाय	"
१० औदारिक शरीर	३५ आहारक	६० आम्ल	"
११ वैक्रिय	३६ तेजस	६१ मधुर	"
१२ आहारक	३७ कार्मण	६२ कर्कश स्पर्श	"
१३ तेजस	३८ वज्रपद्मनाराच	६३ मृदु	"
१४ कारमण		सघयण	६४ गुरु
१५ औदारिक	३९ ऋपद्मनाराच	"	६५ लघु
	अगोपाग ३ ४० नाराच	"	६६ शीत
१६ वैक्रिय	४१ अर्द्ध नाराच	"	६७ उष्ण
१७ आहारक	४२ कौलिका	"	६८ रिन्ध
१८ औदारिक औ	४३ छेयठ	"	६९ रुक्ष
	दारिक वधन	४४ समचतुरस्र	७० नरकानु पूर्वी
१९ तेजस वधन		सत्यान	७१ तिर्यचा
२० कार्मण वधन	४५ यमोघ	"	७२ मनुष्य
२१ औन्ते० का०	४६ सादि	"	७३ देव
२२ वै० नै० वधन	४७ वामन	"	७४ शुभविहायोगति
२३ नै० ते० वधन	४८ कुब्ज	"	७५ अशुभवि० गति
२४ नै० का० वधन	४९ हुँड	"	७६ पराघातनाम
२५ नै० ते० का वधन	५० कृष्ण वर्ण		७७ उच्छ्वासनाम
२६ आ० आ० वधन	५१ नील		७८ आतपनाम
२७ आ० ते० वधन	५२ लाल	"	७९ उद्यातनाम
२८ आ० का० वधन	५३ पीला	"	८० अगुरुलघुनाम
२९ आ० ते० का० वधन	५४ सफेद	"	८१ तीक्ष्णनाम
३० ने० ने० वधन	५५ सुरभिगध		८२ निर्माणनाम
३१ ते० का० वधन	५६ दुरभिगध		८३ उपघात नाम

(१८)

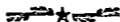
षडशा कर्मप्रणव

		गोत्र
८४ त्रसनाम	६४ स्थावरनाम	
८५ वादरनाम	६४ सूक्ष्मनाम	१ उच्च गोत्र
८६ पर्याप्तानाम	६६ अपर्याप्तानाम	२ नीच गोत्र
८७ प्रत्येकनाम	६७ साधारणनाम	
८८ स्थिरनाम	६८ अस्थिरनाम	अंतराय ५
८९ शुभनाम	६९ अशुभनाम	१ दानान्तराय
९० सौभाग्यनाम	१०० दुर्भगनाम	२ लाभो "
९१ सुस्वरनाम	१०१ दुस्वरनाम	३ भोगा "
९२ आदेयनाम	१०२ अनादेयनाम	४ उपभोगा "
९३ यश कीर्तिनाम	१०३ अयशःकीर्ति	५ वीर्या "

५-१-२-२८-४-१०३-२ ५-कुल १५८ उत्तरप्रकृति;

इति श्री प्रथम कर्मग्रन्थ समाप्तम्

अथ कर्मस्तवनामा द्वितीय कर्मग्रन्थ



तद् धुणिमो वीरजिण जह गुणठाणेषु सयल कम्माइं ॥
 य धुदओदीरखया सत्ता पत्ताणि खवि आणि ॥ १ ॥
 मिच्छे सामण मीसे अविरय देसे पमत्त अपमत्ते ॥
 निअट्ठि अनिअट्ठि सुहुमु वसमखीण सजोगि अजोगि गुणा ॥ २ ॥
 अभिनत्त कम्मगहण वधो ओहेण तत्थ वीमसय ॥
 तित्थपराहारगदुग वज्ज मिच्छमि मत्तरसय ॥ ३ ॥

जिस गुणस्थाने में वध, उदय, उदीरणा और सत्ताको प्राप्त हुवे सभी कर्मोंका जय किया है। उन वीर भगवान की (इम) स्तुति करते हैं, ॥ १ ॥ मिथ्यात्व, सास्वादन, मिश्र, अविरति, देशविरति, प्रमत्तसयत्त, अप्रमत्त सयत्त निवृत्ति, अनिवृत्ति, (बादर सपराय,) सूक्ष्म सपराय, उपशा-तमोह, क्षीणमोह, सयोगी और अयोगी (यह चौदह) गुणस्थानक है ॥ २ ॥ नये कर्मोंके प्रहणको वध कहते हैं यह सामान्यसे एक सौ बीस + (प्रकृति) हैं, तिर्यकर नाम, आहारक द्विक वज्रके एकसौ सत्तर (प्रकृतिका वध) मिथ्यात्व गुणस्थान में हाता है ॥ ३ ॥

+ १५ व धन ५ मघातन १६ घर्णादि १ सम्यक्त्व मोहतीय
 १ मिश्रमोहनिय एव ३८ प्रति अधव हीनसे ओष १२० प्र० का वध
 है। शेष सकेत परिभाषाम जानना।

निरयतिग जाइ थावरचउ हुण्डा यव छिवट्टु नपु मिच्छं ॥

सोलंतो इगहिअसय मासणि तिरिथीण दुहगतिगं ॥ ४ ॥

अणमज्झागिइ संघयण चउ नि उज्जोअ कुखगइ त्थिति ।

पणवीसंतो मीसे चउसयरि दुआउअ अबंधा ॥ ५ ॥

सम्भे सगसयरी जिणाउबंधि नइर नरतिअ विअ कसाया ॥

उरल्लदुगंतो देसे सत्तट्ठी तिअकसायंतो ॥ ६ ॥

तेवट्ठि पमत्ते सोग अरइ अथिरदुग अजस अस्सायं ॥

वुच्छिज्ज छच्च सत्तव नेइसुराउं जयानिट्ठं ॥ ७ ॥

नरकत्रिक, जाति चतुष्क, स्थावर चतुष्क, हुंड सस्थान, आतप नाम, छेवट संघयण, नपुसक वेद और मिथ्यात्व मोहनीय (यह) सोलह प्रकृति वर्जके सास्वादन गु० में एकसो एक प्र० बांधे ॥ तीर्यच त्रिक, थीणद्धित्तिक और दुर्भाग्यत्रिक ॥ ४ ॥ अनन्तानुबंधी चतुष्क, मध्य संस्थान चतुष्क, मध्य संघयण-चतुष्क, नीचगोत्र, उद्योतनाम, अशुभ विहायो गति, स्त्रावेद (एणं) पचीस प्र० (को घटा दे) और दो आयुः (मनुष्य, देव) का यहां अबंध है (इस लिये) चाहत्तर प्र० मिश्र गु० में बांधे) ॥ ५ ॥ अघिरति सम्यक्त्व दृष्टि गु० में जिन नाम, आयुष्य द्विक (मनुष्य, देव) का बंध होता है (इस लिये) सत्तत्तर प्र० बंध है ॥ वज्ररुषभनाराच संघयण, मनुष्यत्रिक, अप्रत्याख्यानी चौक, औदारिक द्विकका अन्त करके सडसठ प्र० देशत्रत्ति गु० में बांधे ॥ तीसरा (प्रत्याख्यानी कषायको वर्जके ॥ ६ ॥ तेसठ प्र० प्रमत्त गु० में बांधे ॥ शोक, अरति, अस्थिर द्विक, अयश, असाता (यह) छे (प्रकृति) विच्छेदहो (अथवा) देवायः प्राप्त करने पर या नष्ट होने पर सात प्र० विच्छेद करे ॥ ७ ॥

गुणमद्वि अप्पमत्ते सुराउवन्नतु जड इहागच्छे ॥

अन्नह अट्टारण्णा ज आहारगदुगवधे ॥ ८ ॥

अडवन्नमपुच्चाइमि निदुगतो छपन्न पणभागे ॥

सुरदुग पण्णिदि सुसगड तमनर उरलविणुतणुवमा ॥ ९ ॥

समचउर निमित्त जिण वन्न अगुरुलहुचउ छलसि तीसतो ॥

चरमे छत्रीमवन्धो हाम रड कुच्छ मय भेश्यो ॥ १० ॥

अनिअट्टिभागपण्णे इगेगहीणो दुवीमनिडवन्धो ॥

उम नजरुचउण्ह कमेण छेश्यो सत्तरसुद्धमे ॥ ११ ॥

अगर सुरायु बाधता हुवा अप्पमत्तगु० प्राप्त करे तो गुणसठ प्र० (को बाधे) अ यथा अठावल प्र० बाधे क्योकि यहा आहाके द्विक्वा यध होता है ॥ ८ ॥ अपूर्ण करण गु० (के पहिले भाग) में अट्टावन प्र० (का यध दाता है) "और" निद्रा द्विक् विच्छेद होतमे पाप भागों में छप्पा प्र० (का यध होता है) छठे भाग में तीस प्र० का अत करे (यथा) देवद्विक, पंचेद्रि जाति, शुभ विद्यायोगति, असायक, औदारिक विना शरीर ४, उपाग २, समचतुरप्र सखान, निरमाण नाम, जिण नाम, यण चतुष्क, अगुरु लघु चतुष्क (के छेद होनेसे) चरम समय छाइम प्र० का यध दाता है ॥ दास्य, रति, दुगन्दा और भयरा नाश होनेपर ॥ ९ ॥ १० ॥ अनिष्टात्त गु० के पाप भागों में (में पहिले भाग में) बाइस प्र० का यध होता है ॥ पुरुषवेद सव्यत्त चतुष्कओ अनुक्रममे एहेर प्र० ही करने पर सठरह प्र० का यध सुरम सपराय गु० में होता है ॥ ११ ॥

२२)

द्वितीय कर्म ग्रन्थ

चउर्दसणु च्च जस नाणविग्घ दसगन्ति सोलसुच्छेओ ॥

तिस सायवंध छेओ सजोगिवंधंतु अणंतो अ ॥ १२ ॥

उदओ विवाग वेअण मुदीरण मपत्ति इह दुवीससयं ॥

सत्तरसयं मिच्छे मीस सम्म आहार जिणणुं दया ॥ १३ ॥

सुहूम तिगायव मिच्छं मिच्छंतं सासणे इगासयं ॥

निरयाणुपुव्वि णु दया अण थावर इग विगल अंतो ॥ १४ ॥

दर्शनावरणीय चतुष्क, उच्चगोत्र, यश नाम, ज्ञान तथा
अन्तरायकी दश प्र० (यह) खोलह प्र० को विच्छेद होनेसे
(उपशान्तमोह, लीणमोह, सयोगी गु०) तीन गु० में सातावेदनी
का बंध होता है और सयोगी गु० के अन्तसमय सातावेदनीका
निरोध करके चौदमें गु० में अबंध होता है ॥ १२ ॥ बंध समाप्त।
विपाकको भोगना उदय कहलाता है. (विपाक पने) नहीं
प्राप्तकी उदीरण होती है (परन्तु उदीरणाके लिये यह अवश्य ध्यान
रखना चाहिये कि जो उदयमान कर्म है उसीकी उदीरणा होती है
किन्तु अनुदयकी नहीं और उदयमान कर्म भी आवलिका प्रमाण
शेष रहने पर उसकी उदीरणा रुक जाती है) यहां उदय (उदी-
रणयोग्य) एकसो वाईस प्र० है मीश्रमोहनी, सम्यक्त्व सो०
आहारकद्विक और जित नामका अनुदय होने से मिथ्यात्व गु०
में एकसो सतरे प्र० उदय ॥ १३ ॥ सुद्धमत्रिक आतप, मिथ्यात्व-
मोहनी मिथ्यात्व गु० में अंत होता है और नरकानुपूर्वी का अनु-
दय होनेसे सास्वादन गु० में एकसोग्यारह प्र० का उदयहोता है अ-
नन्तानुबन्धी चतुष्क, स्थावर, एकेन्द्रियजाति और विकलेन्द्री ॥ १४ ॥

व घ १२० प्रकृति गु० विवरण—

- (१) मिथ्यात्व गु० में ११७-जिन नाम, अहारिक द्विक अवस्थक ।
- (२) सास्वादन गु० १०१-नरु ३, जाति ८, यात्र ४, हँस, आतप
छेवट, ननुसक, मिथ्यात्व मो० एव १६
- (३) मिश्र गु० ७४-तिर्यज, योणद्धि, दुर्भाग्य, अनुमान०, मध्यस्थान,
मध्यसघ०, नीचगोत्र, उद्योत, अगुभ्रि०, रत्नोवेद, मनुष्यात्, देवात्
एव २७ विना
- (४) अविरत गु० ७७-जिन नाम, मनुष्यदेवायु, एव ३ प्र० बाधे
- (५) देश वि० गु० ६७-वसुधैव कुटुम्बकम्, मनुष्ये त्रिक, अप्रत्याशा०, आरा-
रिक द्विक एव १०
- (६) प्रमत स० गु० ६३-तासरे क्वाय की ४ विना
- (७) अप्रमत गु० ५८-५६-शाक, अरती, अविधर, अयरा, अशाता एव ७
अहारिक द्विक बाधे तो ५६ और देवायु बाधे तो ५८
- (८) अप्रवृत्त ० = ६-विद्रा देव, पचेन्द्री, शुभ्रिय, प्रम, श्री, विना,
भाग, सम गौर सभान निर्माण, जिन, यण, अगुरुकृपु एव - विना
- (९) अतिवृत्त गु० १८-दास्य, रति दुग्ध, भय, पुष्पवृ ५३१८
एव ८ विना
- (१०) मुरप्रमत्त गु० ७ सखल लाभ १ विना
एवशमभो एगमोह मज्जाग म एव वातये० का दध, ज्ञान,
११ १२ १३

मीसे एणुर्वी एदया मीसोदण्य मीसतो ॥

चउसयम जए सम्मा एणुपुवोखेवा विअरुसाया १५

मणुतिरिणुपुव्वि त्रिउवह दुहग अणाइज्जदुग मतर छेओ ॥

सगसी इदैसि तिरिगइआउ निउज्जोअ तिकसाया ॥१६॥

अइच्छेओ इगसी पमत्ति आहारजुअल परल्लेवा ॥

थीणतिगाहारग दुग छेओ छस्सयरि अपमत्ते ॥१७॥

मम्मततिमसघयण तिअगच्छेओविसत्तरि अपूव्वे ॥

हासाडलक्क अन्तो छमट्टि अनिअट्टि वेअतिग ॥१८॥

आनुपूर्वीतीन (म० दे० ति०) का अनुदय होने से मीश्र गु० सो प्र० का उदय होता है । क्योंकि यहा मिश्र मो० उदय है । इस लिये १०० और मिश्रमोहनीय का क्षय तथा सम्यक्त्व मोहनीय का और चार आनुपूर्वी के उदय होनेसे अचिरती गु० में एक सौ चार प्र० का उदय हाता है ॥ अपत्यात्यानी चतुष्क ॥१५॥ मनुष्य तिर्यंचानुपूर्वी, वैक्रिया ष्टक, दुभाग्य नाम, अनादेयद्विक (यह) सतरह प्र० विच्छेद होने से देश विरती गु० सतासी प्र० का उदय होता है ॥ तिर्यंच गति, तिर्यंचायु नीच गोत्र, उद्योत नाम और प्रत्यात्यानी कपाय ॥१६ यह आठ प्र० के विच्छेद और आहारक द्विक के उदय होने से इक्यासी प्र० का उदय प्रमत गु० में होता है ॥ थीणद्धी त्रिक, अहारकद्विक के अनुदय होनेसे छेहत्तर प्र० का उदय अप्रमत गु० में हाता है ॥१७॥ सम्यक्त्व मोहनीय और अन्तिम के तीन सघयण क उदयविच्छेद होने से यहत्तर प्र० का उदय अपूर्व का करण गु० में होता है ॥ हास्यादि छे प्र० का उदय छेदचित्र होने से छासठ प्र० का उदय अनिवृति गु० में होता है ॥१८॥

संजलणतिंगछ्छेओ सड्डि सुहुमंमि तुरिअलोभंतो ॥

उवसंत गुणे गुणसड्डि रिसह नाराय दुग अन्तो ॥ १९ ॥

सगवन्न खीणदुचरिमि निद दुगन्तो अचरिमि पणवन्ना ॥

नाखंतराय दंसण चउ छेओ सजोगि वायाला ॥ २० ॥

तित्थुदया उरलाथिर खगइदुग परित्ततिंग छ संठाखा ॥

अगरुलहु वन्नचउ निमिण तेअकम्माइ संघयण ॥ २१ ॥

दूसर सुसर साया साए म य रंच तीस बुच्छेओ ॥

वारस अजोगि सुभगा इज्जजसन्नयरंवेअणिअं ॥ २२ ॥

संखल त्रिक (यह) छे प्र० को वर्जके साठ प्र० का उदय सूक्ष्म संप-
 राय गु० में होता है ॥ चौथे लोभ के अनुदय होने से उनसठ प्र० का
 उदय उपशान्त मोह गु० में होता है ॥ रुषभनाराचद्विकका अन्त होने से
 ॥१६॥ सत्तावन प्र० का उदय क्षीणमोह गु० के अंतिम समयके पूर्व समय
 तक होता है और निद्रा द्विक के क्षय होने से क्षीण मोह गु० के अंत
 समय पचपन प्र० का उदय होता है ॥ ज्ञानावरणीय पांच, अंतराय पांच,
 दर्शनावरणी चार के क्षय होनेसे ४२ वयालीस प्र० का उदय सयोगी गु०
 में होता है ॥२०॥ क्योंकि यहां तीथकर नामका उदय होता है इसलिये
 ४२ कहीं ॥ औदारिक द्विक, अस्थिर द्विक, खगति द्विक, प्रत्येक त्रिक, सं-
 स्थान छे, अगुरुलघु चतुष्क, वर्णचतुष्क, निर्माण नाम, तेजस शरीर,
 कर्मण शरीर, प्रथम संघयण ॥२१॥ सुस्वर, दुस्वर और शाता अशाता
 में का एक यह तीस प्र० के क्षय होनेसे वारह प्र० का उदय अयोगी गु०
 में होता है ॥ सौभाग्य नाम, आदेय नाम, यशः नाम, साता असाता में
 से एक ॥ २२ ॥

- (१) मिथ्यात्व गु० ११७ सम्यक्त्व, मिश्रमो०, अहारिक, जिन (अनुदय है)
- (२) सास्वदन गु० १११ आतप, मिथ्यारथमो०, नरकानूपू०, सुद्धम एव ६,
- (३) मित्र गु० १०० अनुतान०, स्थावर, एके द्री, विकले द्री, अम्नपू ३म दे ती
(यहा मिश्रमो० उदय) ।
- (४) अर्वात० गु० १०४ मिश्रमो० क्षय, मभ्यस्त्रमो० चार अनु०का उदय,
- (५) देशवि० गु० ८७ अप्रत्वा०, मनु० तिर्गि० अनुपू०, वैक्रिय, दुर्भा०,
अनादेय०
- (६) प्रमत० गु० ८१-तिर्यचगति, अनुपू०, नीच, उद्यात, प्रत्याग्या०
(अहारिद्विक उदय)
- (७) अप्रमत० गु० ७६ धिणद्वि, अहारक (एव ५ विच्छेद)
- (८) अपूर्वक० गु० ७२-सम्यक्त्वमो० अतिम सत्रयण (एव ४ वि०)
- (९) अतिवृत्ति वा० गु० ६६-हभ्यक्षक
- (१०) सूदन स० गु० ६०-येदप्रिक स उवलत्रिक,
- (११) उपश तमा० गु० ५७-सव्वललोभो
- (१२) क्षीणमोह० गु० ५५-ऋपभना० द्विक, निद्राद्विक,
- (१३) सजोगो गु० ४२-ज्ञाना०, दर्शनाय०, अत्राय जिनना० उदय)
- (१४) अयोगी गु० १०-औदारि० अथिर, रथाति, प्रत्येक, मर्याण,
अगरुल्लघु, षण, निर्माण तेजस, कामण, प्रथम सच०, सुधर,
४ ४ १ १ १ १ १ १
दुधर, माता असाता, अ तममय०, सौभाग्य, आदेय, यश, न ना
१ १ १ १ १ १ १ १
त्रस, पचैत्री, मनुष्यायु, गति, जिनना, गात्र ।

सत्ता कम्माणठिइ वंधाइ लद्ध अत्तलाभाणं ॥

संते अडयाल सयं जा उवसमु वि जिणु विअतइए ॥२५॥

अपुव्वाइ चउक्के अण तिरिनिरयाउ विणु वियाल सयं ॥

सम्माइ चउसु सत्तग खयंमि इगचत्त सयमहवा ॥२६॥

खवगंतु पप्प चउसुवि पणयालं निरयतिरि सुरउ विणा ॥

सत्तग विणु अडतीसं जा अनिअट्टि पढम भागो ॥२७॥

बंधादि से आत्मस्वरूप पने प्राप्त किया है (ऐसे) कर्मों की स्थिति को सत्ता (कहते हैं) ॥ सत्ता मे १४८ प्र० यावत् उपशान्त मोह गु० तक होती है ॥ जिन नाम विना दूसरे और तीसरे गु० में १४७ प्र० की सत्ता होती है ॥ २५ ॥ अपूर्व करणादि चार गु० में अनन्तानुबंधी चतुष्क , मनुष्य और तिर्यचायु विना एकसौ बयालिस प्र० (की सत्ता देवायु बाँधे उपशम श्रेणी प्राप्तको होती है) अथवा सम्यकत्वादि चार गु० में दर्शन सप्तक क्षय होनेसे १४१ प्र० (की सत्ता श्रेणी रहित) क्षायक सम्यग् दृष्टि को होती है ॥ २६ ॥ जो जीव क्षपक श्रेणी कर तद्भव मोक्ष जाने वाला है वह नारकी तिर्यच और देव वर्ज के एकसौ पैतालीस प्र० की सत्ता चोथेसे सातवें गु० तक होती है और दर्शन सप्तक विना एकसौ अठतीस प्र० की सत्ता यावत् अनिवृत्ति गु० के पहिले भाग तक होती है ॥२७॥

थावर तिरि निरयायव दुग थिण तिगेग विगल साहार ॥
मोलखओ दुवीस मय विअसि विअ तिअ क्रमायतो ॥२८॥

तड आईसु चडदम तेर वार छपण चउतिहियमय कमसो ॥
नपुइत्थि हास छग पृ म तुरिअ क्रोह मयमायखओ ॥ २९ ॥

सुहुमि दुसय लोहतो खीण दुचरि मेगसय दुनिदरखओ ॥
नपनवड चरम ममए चउदसण नाण विग्घतो ॥ ३० ॥

पणमीड सजोगि अजोगी दुचरि मे देव खगड गध दुग ॥
फामद्वन्न रम तणु वधण सघाय पण पण निमिण ॥ ३१॥

स्थावर द्विक, तिर्यच द्विक, नरक द्विक, आतप द्विक, थी
णाद्रि त्रिक, एकेन्द्रियजाति, विगलेन्द्रिय (और) साधारण (इन)
सोलह प्र के क्षय होनेसे एक सौ बाईस प्र की सत्ता दूजे भाग में
होती है ॥ दूसरे और तीसरे कपाय के क्षय होन पर ११४-११३
११२-१०६-१०५ १०४ १०३ की सत्ता तीजे आदि भाग में होती
है क्योंकि अनुक्रमसे नपु मक वेद, स्त्री वेद, हायपट्क, पुरुष वेद,
सञ्जल क्रोध, मान, भायाका क्षय होता है ॥ २६ ॥ सुनमसपराय
गु० में एकसो दो० प्र० (कीसता) ॥ सञ्जल लोभ १के० क्षय होनेसे
एक सो एक प्र०की सत्ता (क्षीण मोह गु० के) द्विधरम समय
(तकरहती है) । (और) निद्राद्विक के क्षय होने से (क्षीण
मोह गु० के) अन्त समय निनानव्वे प्र० की सत्ता होती है।
दर्शनावरणीय चार, ज्ञानावरणीय पाच (और) अन्तरायाच
(के क्षय होनेसे) पचासी प्र० (की सत्ता) सयोगी गु० में होती
है ॥ ३१ ॥

संघयण अथिर सांठण छदक अगुरुलहु चउ अपज्जपं ॥
 सायंब असायवा परित्तुवंग तिग सुसर निअं ॥ ३२ ॥
 विसयरी खओअ चरिमे तेरस मणुअ तस तिगजसाइज्जं ॥
 सुभग जिणुच्च परिण्दिअ साया माए गयर छेओ ॥ ३३ ॥
 नर अणुपूव्वि विलावा वारस चरिम सभयंमि जोखविउ ॥
 पत्तो सिद्धिं देविंद वंदिअं नमह तंवीरं ॥ ३४ ॥ सत्तासम्मता

अयोगि गु० के द्वि चरम समय तक पचासी प्र० की सत्ता रहती है तत् समय देवद्विक, खगतिद्विक, गन्धद्विक,, स्पर्शाष्टक, वर्णपांच, रसपांच शरीर पांच,संघयणछे, अस्थिरछे संस्थान छे,अगुरुलघु चतुष्क, पर्याप्तना स,शाता अशातामें की एक प्रत्येकत्रिक, उपांगत्रिक, सुस्वर नाम और नीच गोत्र ॥३२॥ (यह) बहोत्तर प्र० के क्षय होने से (आयोगी गु० के) चरम समय तेरह प्र० की सत्ता रहती है ॥ मनुष्य त्रिक, त्रसत्रिक, यशः नाम, आदेय नाम, शुभ नाम, जिन नाम, उच्च गोत्र, पचेन्द्रिय जाति, शाता अशाता में की एवं एक १३ प्र० क्षय करे (अथवा मतांतरे मनुष्यानुपूर्वि बिना वारह प्र० का चरम समय जिन्होंने क्षय करके सिद्धपद को प्राप्त किया है उन देवेन्द्रोंसे वदनीय वीर भगवान को नमस्कार हो ॥३३॥३४॥

इति सत्ता अधिकार.

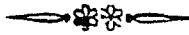
व्यय	दर	व्यय	दर
...	१५८	...	१५८
...	१५८	...	१५८
...	१५८	...	१५८
...	१५८	...	१५८
...	१५८	...	१५८
...	१५८	...	१५८
...	१५८	...	१५८
...	१५८	...	१५८
...	१५८	...	१५८

व्यय	दर	व्यय	दर
१	१५८	१५८	१५८
२	१५८	१५८	१५८
३	१५८	१५८	१५८
४	१५८	१५८	१५८
५	१५८	१५८	१५८
६	१५८	१५८	१५८
७	१५८	१५८	१५८
८	१५८	१५८	१५८
९	१५८	१५८	१५८

सुदाम स	१५८	१५८	१५८
उपशात मो	१५८	१५८	१५८
हीण मोह	१५८	१५८	१५८
सयागी	१५८	१५८	१५८
अयागी	१५८	१५८	१५८

॥ वंदे वीरम् ॥

श्री बंधस्वामित्वनामा तृतीय कर्मग्रन्थ



बंधविहाण त्रिमुक्कं वंदिय सिरि वद्धमाण जिण चंदं ॥
गइ आइसु वुच्छं समासओ बंध सामित्तं ॥ १ ॥

गइ इंदिएय काए जोए वेए कप्पाय नालेय ॥
संयम दंसण लेसा भव सम्मे सन्नि आहारे ॥ २ ॥

जिण सुरवेउवाहारदु देवाउय निरय सुहुम विगल तिगं ॥
एगिदि थावरा यव नपु मिच्छ हुंड छेवट्टं ॥ ३ ॥

कर्मबन्ध के विधानसे रहित चन्द्रमा के समान सौम्य ऐसे श्री वद्धमान जिनेश्वर को नमस्कार करके गति आदि (मार्गणा) के विषे संक्षेपसे बन्द स्वामीत्वको कहूंगा ॥ १ ॥ गति ४, इन्द्रिय ५, काय ६ योग ३ वेद ३ कषाय ४ ज्ञान ८ संयम ७ दर्शन ४ लेश्या ६ भव २ सम्यक्त्व ६ संज्ञी २ आहारी २ यह ६२ मार्गणा ॥ २ ॥ जिन नाम, सुरद्विक, वैक्रियद्विक, आहारक द्विक, देवायुः, नारकीत्रिक, सुद्धमत्रिक, विकलेन्द्रियत्रिक एकेन्द्रिय जाति, स्थावर नाम, आतप नाम, नपुंसक वेद, मिथ्यात्व मोहनीय, हुंडसंस्थान छेवट्ट संघयण ॥ ३ ॥

अणमज्झा गिह भययण कुरगइ निय इत्थि डुहग थीण तिग ॥

उज्जोय तिरिडुग तिरि नराउ नर उरलदुग रिसह ॥ ४ ॥

सुरइ गुण वीस वज्ज इग सउ ओहेण ाधहि निरया ॥

तित्थि पिणा मिच्छि सय सासणि नउ चउ विणा छनुई ॥५॥

विणु अण छवीस भीसे विसयरि मममि जिण नराउ जुआ ॥

इअ रयणाइस्सु भगो पकाइसु तित्थयर हीणो ॥ ६ ॥

अणिण मणु आउ ओहे सत्तमिए नरडुगुच्च पिणु मिच्छे ॥

इग नवइ सासणे तिरि आउ नउ म चउ वज्ज ॥ ७ ॥

अन-तानु वधि चतुष्क, मध्य सस्थान चार, मध्य सघयण चार, अशुभ विहायो गति, नीच गात्र, स्त्री वेद, दुर्भाग्यत्रिक, यौगद्धित्रिक, ल्योत नाम, तीर्थचद्विक, तीर्थचायु, मनुष्यायु, मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक, और वज्ररुपम नाराच सघयण (यह ५५ प्र० परिमाण में आगे काम आवेगी जैसे अगली गाथामे सुरादि १६ प्र० फही है वह सुरद्विकसे आतपनाम तक १६ सम क्ता इस तरह अन्य जगह भी ॥३॥ ४॥ सुरादि १६ प्र० वज्रके एकमोएक ओधे नारकी बाधते हैं ॥ तीर्थकर नाम विना मिथ्यात्व गु० एकसो प्र० बाधे ॥ नपु सक चतुष्क विना छयाननो प्र० सास्वादन गु० मे बाधे ॥ अन तानुबन्धी २६ विना मिश्र गु० सत्तर प्र० बाधे ॥ जिन नाम और मनुष्यायु सवित बहत्तर प्र० अविरति सम्यग् गु० में बाधे ॥ इस प्रकार (कामघस्वामित्व) रत्न प्रभादि तीन नारका में और एकप्रभादि (तीन नारकी में उक्त प्रकृतियों में से) तीर्थकर नाम, हीन करके फहना ॥ ६ ॥ जिननाम और मनुष्यायु विना ६६ प्र० ओधे सातमी नारकी में बाधे ॥ मनुष्य द्विक और उच गोत्र विना ६६ प्र० मिथ्यात्व गु० में बाधे तीर्थचायु और नपु सक चतुष्क विना ६७ प्र० सास्वादन गु० में बाधे ॥ ७ ॥

अण चउवीस विरहिया सनर दुगुच्चाय सयरि मीस दुगे ॥

सत्तर सओ ओहि मिच्छे पज्ज तिरिआ विणु जिणाहारं ॥८॥

विणु निरयंसोल सासणि सुराउ अण एगतीस विणु मीसे ॥

ससुराउ सयरि सम्भे वीअ कसाए विणा देसे ॥ ९ ॥

इय चउगुणे सुघि नरा परमजया सजिण ओहु देसाइ ॥

जिण इक्कारस हीणं नवसय अपज्जत्त तिरिअनरा ॥ १० ॥

निरयव्व सुरा नवरं ओहे मिच्छे इग्गिदि तिग सहिआ ॥

कप्प दुगे विअ एवं जिण हीणो जोड भवण वणे ॥ ११ ॥

अनन्तानुबन्धी २४ प्र० विना और मनुष्यादिक तथा ऊंच
गात्र सहित ७० प्र० मिश्र और अविरति गु० में सातमी नारकी-
वाले बांधे ॥ जिन नाम और आहारकदिक विना ११७ प्र०
पर्याप्ता तिर्यच ओघे तथा मिथ्यात्व गु० में बांधे ॥ ८ ॥ नरकादि
१६ प्र० विना १०१ प्र० सास्वादन गु० में बांधे ॥ ८ ॥ नरकादि
१६ प्र० विना १०१ प्र० सास्वादन गु० में बांधे ॥ देवायुः और
अनन्तानुबन्धी ३१ विना ६६ प्र० मिश्र गु० में बांधे ॥ देवायुः
सहित ७० प्र० अविरती सम्य० गु० में बांधे ॥ दूजी कषाय वर्जके
६६ प्र० देशविरति गु० तिर्यच पर्याप्ता बांधे ॥ ६ ॥ ऐसे पर्याप्ता
तिर्यचकी माफिक चार गुणस्थानमें मनुष्य भी समझना परन्तु
अविरति सम्य० गु० में जिन नाम सहित ७१ प्र० का बंध कहना
॥ (शेष) विरतादि १० गु० में ओघे कर्मस्तव की माफिक
कहना ॥ जिनादि ११ प्र० हीन करनेसे १०६ प्र० का बंध अपर्याप्त
तिर्यच और मनुष्यको होता है ॥ १ ॥ नारकी की तरह देवता का
भी बंध स्वामीत्व कहना, परन्तु इतना विशेष है कि ओघे और
मिथ्यात्वगु० में देवता एकेंद्रियत्रिक सहित बांधे । पहिले और
दूसरे देवलोकमें भी इसी तरह । व्योतिषी और भुवनपति में जिन
नाम विना शेष देवतार्थों की तरह समझना ॥ ११ ॥

रयणुव्वसण कुमाराइ आसायाइ उज्जोय चउरहिया ॥

अपज्ज तिरिअव्व नवसयमिगिदि पुढविजलतरु निगले ॥१२॥

छनउड सासणि निणु सुहम तेर केइ पुण विंति चउनवइ ॥

तिरिअ नरा उहिं विणा तणु पज्जति न जति जअो ॥ १३ ॥

ओहु, पणिदि तसे गइ तसे जिणिकार नरति गुच्च विणा ॥

मण,वय जोगे ओहो उरले नरभगु 'तम्मिस्से ॥ १४ ॥

आहार छग पिणोहे चउदससउ मिच्छि जिण पणग हीण ॥

सासणि चउनवइ विणा तिरिअ नराउ मुहुमतेर ॥ १५ ॥

सनत्कुमार देवलोकसे यावत् आठवें सहस्रार देवलोक तक रत्नप्रभा नारकी कि परे बध स्वामीत्व समझना ॥ आनत वगैरह शेष देवोंमें उद्योत चतुष्क विना बध स्वामीत्व कहना ॥ अपर्याप्ता तिर्यचकी तरह १०६ प्र० का बध एकेन्द्रिय जाति, पृथ्वीकाय अपकाय, वनस्पतिकाय और विकलेन्द्रिय में मिथ्यात्व गु० में कहना ॥ १२ ॥ सास्यादन गु० में सुद्धमादि तेरह प्र० विना ६६ प्र० का बध एकेन्द्रियादि को होता है। कोई आचार्य तिर्यच और मनुष्य आयु विना ६४ प्र० का बध कहते हैं। क्यों कि वे इस गु० में शरीर पर्याप्ति पूरा नहीं करते ॥ १३ ॥ पचेन्द्रिय जाति और ब्रह्म कायमें कर्मस्त्व आध बधकी तरह कहना। गति ब्रह्ममें जिन एकादश, मनुष्यत्रिंश और ऊच गौत्र विना १०५ प्र० का बध कहना ॥ मनयाग, ध्यानयोग और औदारिक काय योगमें कर्मस्त्वकी तरह गु० का बध कहना ॥ औदारिक मिश्र काय योगमें ॥ १४ ॥ आहारकादि छे प्र० वर्णके ११४ प्र० का बोधे बध हाता है ॥ मिथ्यात्व गु० में जिन पचरु हीन होने से १०६ प्र० का बध होता है ॥ सास्यादन गु० में तिर्यचायु, मनुष्यायु और सुद्धमादि तेरह प्र० विना ६४ प्र० का बध होता है ॥ १५ ॥

अण चउत्रीसाइ विणा जिण पण जुअ सम्मि जोगिणो सायं ॥
 विणु तिरिनराउ कम्भेवि एवं माहार दुगि ओहो ॥ १६ ॥
 सुर ओहो वेउव्वे तिरिअ नराउ रहिओ अ तंम्मिसे ॥
 वेअतिगा इम विअ तिअ कसाय नव दु चउ पंच गुणा ॥ १७ ॥
 संजलतिगे नव दस लोहे चउ अजइ दुति अनाण तिगे ॥
 वारस अचख्खु चख्खुसु पढमा अहखाय चरिमचउ ॥ १८ ॥
 मणनाणि सग जयाइ समइ अच्छेअ चउ दुनि परिहारे ॥
 केलदुगि दो चरिमा जयाइ नव मइसु ओहिदुगे ॥ १९ ॥

अनन्तानुबन्धी चौवीश बिना और जिन पंचक सहित ७५
 प्र० सम्यक्त्व दृष्टी बांधे ॥ सयागी गुणास्थानमें औदारिक मिश्र
 वाला एक साता बांधे ॥ कार्मण काय योग तिर्यचायुः मनुष्यायुः वर्ज
 के श्रेष्ठ औदारिक मिश्रवत् ॥ आहारक द्विक बन्धवत् बोधे ॥ १६ ॥
 देवगति के ओघ बन्धवत् वैक्रिय शरीर बन्ध स्वामित्व और वैक्रिय
 मिश्रका तिर्यच, मनुष्यायुः बिना ओघे देवगतिवत् समझना ॥
 वेदात्रिकमें नव गु० ॥ पहिला कषाय में दो गु०, दूसरे कषाय में चार
 गु०, तीसरे कषाय में पांच गु०, होते है ॥ १७ ॥ संवत्स के क्रोध,
 मान, माया से नव गु० और लोभ में दश गु० होते है। बन्ध कर्म
 स्तवकी तरह ॥ अविरात चरित्र मे चार गु० अज्ञानत्रिकमें दो
 या तीन गु०, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन मे बारह गु०, यथाक्यात
 चरित्र में अन्त के चार गु० हांते है। बन्ध अपने अपने गु० का
 कर्मस्तवकी तरह कहदेना ॥ १८ ॥ मनः पर्यव ज्ञान में सात गु० सामा-
 यिक और छेदोपस्थापनीय चा० में चार गु०, परिहार विशुद्धिमें
 दो गु०, केवलद्विकमें दो गु० और मति ज्ञान, श्रुति ज्ञान, अवधि-
 द्विकमे नव गु० होते है। बंध स्व स्व गु० आश्री ओघवत् बंध
 कहना ॥ १९ ॥

अह उग्रममि चउ वैश्रगि सडए इकार मिच्छतिगिदेसे ॥
 सुहुमि सठाण तेरस आहारगि निअ निअ गुणोहो ॥ २० ॥
 परमुपसमिन्डुता आउनव धति तेण अजय गुणे ॥
 देव मणु आउहिणे देसाइसु पुण सुराउ विणा ॥ २१ ॥
 ओहे अट्टार सय आहार दुगूण माइलेस तिगे ॥
 त तित्त्योण मिच्छे साणाइसु सव्हि ओहो ॥ २२ ॥
 तेउ निरय नपूणा जउजोअ चउ निरय चार विणु सुक्का ॥
 विणु निरय चार पम्हा अनिणाहारा इमामिच्छे ॥ २३ ॥

उपशम सम्यक्त्व आठ गु०, बदक सम्य० चार गु०, क्षाधिक
 सम्य० इग्यारह गु०, मिथ्यात्वत्रिक याने मिथ्यात्व, सास्त्रादन
 और मिथ्र यह मिथ्यात्वत्रिक, दश विरतो और सुद्धम सपराय
 अपना २ एकैक गु० हाता है। आहारिक म तेरह गु० हाते हैं। ष-घ
 ओघ की तरह कहदेना ॥ २० ॥ परंतु उपशम सम्यक्त्व में वर्तता
 हुवा नीव आयुष्य नहीं घाधता, इसलिये अत्रित सम्यक्त्व दष्टि
 गु० में देवायु मनुष्यायु छोड़के अ य प्रकृत्तिको घाध और देश
 धिरतादि गु० में देवायु वर्जके घाध ॥ २१ ॥ आहारकद्विक
 वर्जक ११८ प्र० का ष य ओवे प्रथम की तीन लेश्याओं में हाता है ॥
 मिथ्यात्व गु० में तिन नाम बजके ११७ प्र० का ष घ हाता है जेप
 सास्त्रादनादि गु० में ओषवत ॥ २२ ॥ तेजा लेश्यामें नरकादि
 ६ प्र० विना १११ प्र० का ष-घ होता है ॥ उद्योत चतुष्क, नरकादि
 १२ प्र० विना १०८ प्र० का ष य शुक्ल लेश्यामें हाता है ॥ और
 नरकादि १२ प्र० त्रिना १०८ प्र० का ष-घ पद्म लेश्या में होता है ॥
 तीर्थंकर नाम और आहारकद्विक वर्जके मिथ्यात्व गु० में तीर्था
 लेश्याओंका १२ १२ ष-घ नानना ॥ २३ ॥

सर्व गुण भव्य सन्निभु ओहु अभव्या असन्नि मिच्छि समा ॥

सासणि असन्नि सन्निव्व कम्मण भगो अणाहारे ॥२४॥

तिसु दुसु सुक्काइ गुणा चउ सग तेरत्ति वंध सामितं ॥

देविंदसुरि रइअं नेअं कम्मत्थयं सोउं ॥ २५ ॥

भव्य और संज्ञीमें सर्व गु० और वध कर्मस्तववत ॥ अभव्य और असंज्ञीको, मिथ्यात्व गु० समान वध होता है ॥ असंज्ञी को सास्वादन गु० में वंध संज्ञीवत कहना ॥ अनाहारक में कर्मण कायवत वध कहना ॥ २४ ॥ तीनल्ल लेश्यामें प्रथम के चार गु० हैं. दो लेश्यामें सात गु० हैं. और शुक्ल लेश्यामें तेरह गु० होते हैं. इस तरह वध स्वामित्व नामक कर्मग्रन्थ श्री देवेन्द्रसूरी ने रचा है यह ग्रन्थ कर्मस्तव नामा दूसरे कर्मग्रन्थ को समझ कर अध्ययन करना चाहिये ॥ २५ ॥

इति वंध स्वामित्व नामक तीसरा कर्मग्रन्थ

॥ समाप्तम् ॥



१	१०५	१०५	६४	७५	७५	६३	५६	५८	१७
४	११४	१०६	६४	७५	७५	६३	५६	५८	१७
३	१०२	१०१	६४	७५	७५	६३	५६	५८	१७
१	६३								
४	११२	१०७	६४	७५	७५	६३	५६	५८	१७
६	१२०	११५	१०१	७५	७५	६३	५६	५८	१७
२	११७	११७	१०१	७५	७५	६३	५६	५८	१७
४	११८	११७	१०१	७५	७५	६३	५६	५८	१७
५	११८	११७	१०१	७५	७५	६३	५६	५८	१७
१०	१२०	११७	१०१	७५	७५	६३	५६	५८	१७
६	७६								
७	६५								
२	१								
३	११७	११७	१०१	७५	७५	६३	५६	५८	१७
४	६५								
२	१७								

तेऊ० भा३

बौद्धारिकमिश्र

वैक्रियमिश्र

आहारककाय, आहा० मिश्र०

कर्मणकाय

स्त्री, पुरुष, नपुंसकवेद, सज्वल ३

अनंतानुबन्धी ४ असंक्षी.

अप्रत्याख्यानी ४ असंयत

कुण्णादि ३

प्रत्याख्यानी ४

संज्वललोभ १

मति, श्रुति, अवधिज्ञान

अ० दर्शन०

मनःपर्यव

केवलज्ञान, दर्शन,

मति अ० श्रुति अ० विभंगज्ञान

सामायिक० छेदोप०

परिहार विशुद्धि

सूक्ष्मसंपराय

४	६७	१०८	१०९	७७	१०	१	१
१	१११	१०८	१०९	७७	७७	१	१
७	१०८	१०९	१०९	७७	७७	१	१
७	११७	११७	१०९	७७	७७	१	१
८	७७	१०९	१०९	७७	७७	१	१
१	१०९	१०९	१०९	७७	७७	१	१
४	७६	७७	७७	७७	७७	१	१
११	७७	७७	७७	७७	७७	१	१
१	७४	७७	७७	७७	७७	१	१
५	११२	१०७	६४	७५	७५	१	१

यथारयात्

देशधिरति

तेजोलेपुनी

पद्मलेशी

अभन्व्य, मिथ्यारव

धौपशमिक

सारवादन

स्योपशम

सायिक

मिश्र

अणाहारी

॥ इति तृतीय कर्मग्रन्थ यत्र समाप्तं ॥

॥ श्री वीराय नमः ॥

अथ षडशीतिनाम चतुर्थं कर्मग्रन्थ,

卐 — ❁ — 卐

नमिअ विणं जिअ मग्गए गुणठाणुवओग जोग लेसाओ ॥

बंधप्पवहू भावे संखिज्जाइ किमवि बुच्छं ॥ १ ॥

नमिअ जिणं वत्तवा चउदस जिअठाणएसु गुणठाणा ॥

जोगु वओग लेसा वंधो दओ दीरणा सत्ता ॥ १ ॥

इह^१ सुहम^२ वायरेगिंदि^३ वि^४ ति^५ चउ^६ असन्नि^७ सन्नि^८ पंचिदी ॥

अपजत्ता^९ पज्जत्ता^{१०} कमेण^{११} चउदस^{१२} जिअट्टाणा ॥ २ ॥

वायर^{१३} असन्नि^{१४} विगल्ले^{१५} अपज्जि^{१६} वढम^{१७} विअ^{१८} सन्नि^{१९} अपजत्ते ॥

अजय^{२०} जुअ^{२१} सन्नि^{२२} पज्जे^{२३} सव्वगुण^{२४} मिच्छ^{२५} सेसेसु ॥ ३ ॥

जिनेश्वर को नमस्कार करके जीव स्थान, मार्गणास्थान, गुण स्थान, उपयोग, योग, लेश्या, बन्ध, अल्पाधहुत्व, भाव और संख्यातादि को संक्षेप में कहूंगा ॥ १ ॥ जिनेश्वर को नमस्कार करके चौदह जीव स्थान पर गुणस्थानक, योग, उपयोग, लेश्या, बंध, उदय, उदीरणा और सत्ता को कहूंगा ॥ १ ॥ इस संसार में सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और सज्ञीपंचेन्द्रिय इनको पर्याप्ता, अपर्याप्ता गणनेसे क्रमशः चौदह जीव स्थान होते हैं ॥ २ ॥ अपर्याप्ता बादर एकेन्द्रिय असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्ता और विकलेन्द्रिय अपर्याप्ता मे प्रथम के दो गु० होते हैं ॥ अपर्याप्ता संज्ञी पचेन्द्रिय में अत्रिरति सहित तीन गु० होते हैं ॥ संज्ञी पंचेन्द्रिय मे सब गु० होते हैं और शेष जीव स्थानों मे मिथ्यात्व गु० होता है ॥ ३ ॥

अपजत्त छक्किं कम्मुरल मीस जोगा अपज्ज सन्निसु ॥

ते स वि उव्वमीस एसु तणु पज्जेसु उरल मन्ने ॥ ७ ॥

सव्वे सन्निपज्जते उरल सुद्धमे सभासु त चउसु ॥

वायरि स वि उज्जिदुग पजसन्निसु वार उअथोगा ॥ ५ ॥

पज्ज चउरिंदि असन्निसु दुद स दुअनाण दससु चरसु विणा ॥

सन्नि अपज्जे मण नाण चरसु केवल दुग विहुणा ॥ ६ ॥

जीवस्थाने योग ॥ छे अपर्याप्ता जीवोमें फारण और औदारिक

मिथ्र योग होता है, अपर्याप्ता सही पंचेन्द्री में घैत्रिय मिथ्र सहित
हीन योग होते हैं, किसी आचार्य का मत है कि शरीर पर्याप्ति
पूर्ण करने पर औदारिक काय योग भी होता है ॥ ४ ॥ सही

पंचेन्द्रिय पर्याप्ता में सय योग होते हैं, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यां
में औदारिक काययोग होता है, त्रिकलेन्द्रिय पर्याप्ता और असही
पंचेन्द्रिय पर्याप्ता में औदा० काय० और घचन योग होता है,
यादर एकेन्द्रिय पर्याप्ता में घैत्रिय द्विफ सहित तीन योग होते हैं ॥

जीवस्थाने उप० ॥ पर्याप्ता सही पंचेन्द्रिय में बारह उपयोग
है ॥ ५ ॥ पर्याप्ता चौरिन्द्रिय, पर्याप्ता अमही पंचेन्द्रिय में दो
दर्शन और दो अज्ञान होते हैं, चार एकेन्द्रिय, दो चेरिन्द्रिय, दो
वेशन्द्रिय, चौरिन्द्रिय अप० और असहीय पंचेन्द्रिय अप० में
चतुदर्शन बिना तीन उपयोग होते हैं और सही पंचेन्द्रिय अप
र्याप्ता मन पर्यवज्ञान, चतुदर्शन, केषन द्विफ बिना आठ उपयोग
होते हैं ॥६॥

सन्नि दुगि छलेस अपज्ज वायरे पढम चउ ति सेसेसु ॥

सत्तह वधुदीरण संतु दया अह तेरससु ॥ ७ ॥

सत्तह छेग बंधा संतु दया सत्त अह चत्तारि ।

सत्तह छ पंच दुगं उदीरणा सन्नि पज्जते ॥ ८ ॥

गइ इंदिएय काए जोए वेए कसाय नाण्णेषु ॥

संजम दसण लेसा भव सम्मे सन्नि आहारे ॥ ९ ॥

सुर नर तिरि निरिय गइइग विअ तिअ चउ पणंदि छक्काया ॥

भू जल जलणा निल वण तसाय मण वयण तणु जोगा ॥१०॥

जीवस्थाने लेश्या, बन्ध, उदय, उदीरणा, सत्ता—संज्ञीद्वि-
कर्म छे लेश्या अपर्याप्ता वादर एकेन्द्रिय में प्रथम की चार लेश्या
और वाकी जीवस्थान में तीन लेश्या होती है ॥ बंध और उदी-
रणा में सात, आठ कर्म और सत्ता तथा उदय में आठ कर्म तेरह
जीवस्थान संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्ता सिवाय होते हैं ॥ ७ ॥ संज्ञी
पंचेन्द्रिय पर्याप्ता में ७-८-६-१ का कर्मबन्ध होता है, सत्ता और
उदय सात, आठ और चार कर्म की और उदीरणा ७-८ ६-५
कर्म की होती है ॥८॥ मार्गणास्थान--गति ४ इन्द्रिय ५ काय ६

योग ३ वेद ३ - षाय ४ ज्ञान ८ संयम ७ दर्शन ४ लेश्या ६ भव्य
७ सम्यक्त्व ६ मंजी २ आहारी २ एवं ६२ ॥ ६ ॥ गति ४—

देवता, मनुष्य, तिर्यच और नारकी, इन्द्रिय—५ एकेन्द्रिय,
बेरिन्द्रिय, तेरिन्द्रिय चौरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय० काय ६—
पृथ्वीकाय, अप्प, तेउ, वाउ, वनस्पति० और त्रसकाय, योग ३—
मनयोग, वचनयोग, काययोग ॥१०॥

न	श्रीवर्ण	सूत्र	याग	उप	श्री	यथ	उदय	श्री	सत्ता	अल्पावद्धय	
१	सूत्रमन्त्रेऽत्रय	अवयो०	०-३	३	३	५-८	८	७-८	८	असद्यगुणा	१३
२	"	पर्याप्त्वा	१	३	३	७-८	८	७-८	८	सद्यगुणा	१४
३	वा१८	अपर्याप्त्वा	३	३	४	७-८	८	७-८	८	असद्यगुणा	१२
४	"	पर्याप्त्वा	३	३	३	७-८	८	७-८	८	अनतगुणा	११
५	वेरिऽत्रय	अपर्याप्त्वा	२-३	३	३	७-८	८	७-८	८	विशेषाधिक	१०
६	"	पर्याप्त्वा	०	३	३	७-८	८	७-८	८	"	५
७	तेरिऽत्रय	अपर्याप्त्वा	०-३	३	३	७-८	८	७-८	८	"	६
८	"	पर्याप्त्वा	२	३	३	७-८	८	७-८	८	"	६
९	शौरिऽत्रय	अपर्याप्त्वा	२-३	३	३	७-८	८	७-८	८	"	६
१०	"	पर्याप्त्वा	२	४	३	७-८	८	७-८	८	सद्यगुणा	३
११	अगती पदेऽ	अपर्याप्त्वा	०-३	३	३	७-८	८	७-८	८	असद्यगुणा	७
१२	"	पर्याप्त्वा	२	४	३	७-८	८	७-८	८	विशेषाधिक	४
१३	सती	अपर्याप्त्वा	३	८	६	७-८	८	७-८	८	असद्यगुणा	२
१४	"	पर्याप्त्वा	१५	१२	६	७-८	८	७-८	८	सद्यसे स्ताक	१

१२

वेय नरि त्थि नपुसंक कसाय कोह मय माय लोमत्ति ॥

मइ सु अवहि मण केवल विभंग मइ सुअ नाण सागारा ॥११॥

सामाअ छेअ परिहार सुहुम अहख्खाय देसजय अजया ॥

चख्खु अचख्खु ओही केवल दंसण अणागारा ॥१२॥

क्किण्हा नीला काऊ तेऊ पम्हा वा सुक्क भव्विअरा ॥

वेअग खइगु वसम मिच्छ मीस सासण सन्निअरे ॥ १३ ॥

आहारेअरभेआ सुर निरय विभंग भइ सुओहिदुगे ॥

सम्मत्त तिगे पम्हा सुक्का सन्नीसु सन्निदुगं ॥ १४ ॥

वेद ३ पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसक० कषाय ४ क्रोध

मान, माया और लोभ, ज्ञान ८ मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान

मनःपर्यव ज्ञान, केवलज्ञान मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंग ज्ञान यह

साकार उपयोग है ॥ ११ ॥ संयम ७ सामायक०, छेदोपस्थापनीय

परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात, देशविरति, आंवरति, ॥ दर्शन

४ चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन और केवल दर्शन यह अना-

कार उपयोग है ॥ १२ ॥ लेश्या ६ कृष्ण०, नील०, काषीत०, तेजो०,

पद्म और शुक्ल ॥ भव्य अभव्य ॥ सम्यकत्व ६ वेदक याने च्यौपशामिक

ज्ञायिक, उपशामिक, मिध्यात्व, मिश्र और सास्वादन ॥ सत्री, असत्री ॥

आहारी, अणाहारी ॥ एव ६२ मार्गणा ॥ मार्गणा विषय जीवभेद देवगति

नरकगति, विभंग ज्ञान, मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, अवधि दर्शन

सम्यकत्वत्रिक, पद्म लेश्या, शुक्ल लेश्या और पचेन्द्रियमें जीवके दोभेद

संज्ञि पचेन्द्रिय पर्याप्ता और अपर्याप्ता ॥ १४ ॥

तमसन्नि अपञ्ज जुय नरे सवायर अपञ्ज तेऊए ॥ १
 थायर इगिदि पढमा चउ चार असन्नि दु दुविगले ॥ १५ ॥
 ढस चरिम तसे अजया हारग तिरि तणु कसाय दुअनाणे ॥
 पढमतिलेमा भनि अर अचरुवु नपु मिच्छि सव्वेणि ॥ १६ ॥
 पज सन्नी केवल दुगे मनम मणनाण देस मण सीसे ॥
 पणचरिम पञ्ज वयणे तिय छव पज्जियर चरन्नुमि ॥ १७ ॥
 थी नर पण्णिदि चरमा चउ अणहारे दुमनि छ अपज्जा ॥
 ते सुद्धम अपञ्ज विणा सामणि इतो गुणे पुच्छ ॥ १८ ॥

मनुष्य गावमें पूर्णोक्त दा और लवगी अपर्याप्ता असङ्गि युक्त होने से तीन भेद ॥ तेजो लेश्या में सङ्घिद्विक और वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त सहि व तीन भेद । पाच स्यायर और एकेन्द्रिय में प्रथमके चार जीव भेद होते हैं ॥ असङ्गि मार्गणा में धारह जीव भेद और त्रिकलेन्द्रिय मार्गणा से दो जीव भेद हैं ॥ १५ ॥ त्रसकाय में अत के दस जीव भेद हैं ॥ अविर ति चारित्र, आहारी तिर्यच गति, काययोग, कषाय, दोअज्ञान, प्रथम की तीन लेश्या, भव्य, अभव्य, अचक्षुदर्शन, नपुस कवेद और मिथ्यात्व मार्गणा मे सर्व जीवस्थान हाते है ॥ १६ ॥ केवलज्ञान, केवलदर्शन पाच समय, मन पर्यवज्ञान, देशविरति, मनयोग और मिश्र सम्यकरत्वमें पर्याप्ता सङ्घि पचेन्द्रिय एक जीवस्थान है ॥ वचन योग मे अ त के पर्याप्ता पाच जीव स्थान है ॥ चक्षुदर्शन में पर्याप्ता तीन जीवस्थान है या तीन पर्याप्त अपर्याप्ता मिलके छे जीव भेद होते हैं ॥ १७ ॥ स्त्रीवेद पुरुषवेद और पचे द्रिय में अ तके चार जीवस्थान होते हैं ॥ अणहारी मार्गणामें आठ जीव स्थान सङ्घि द्विक पर्याप्ता अपर्याप्ता और छे अपर्याप्ता ॥ सूद्धम अपर्याप्ता केविना सात जीवस्थान सास्वादन सम्यकरत्वमें होते है ॥ मार्गणा विपे गुणस्थानद्वार कहेंगे ॥ १८ ॥

षण्^२ तिरि चउ^४ सुर^५ निरए^६ नर सन्नि^७ पण्दि भव्व^८ तमि सन्वे^९ ॥

इग^१ विगल^२ भु^३ दग^४ वणे^५ दु^६ दु^७ एगंगइतस^८ अभन्वे^९ ॥१९॥

वेअ^१ ति^२ कसाय^३ नव^४ दस^५ लोभे^६ चउ^७ अजइ^८ दु^९ ति^{१०} अनाण^{११} तिगे^{१२} ॥

वारस^१ अचख्खु^२ चख्खुसु^३ पढमा^४ अहखाइ^५ चरिम^६ चउ^७ ॥२०॥

मण्णाणि^१ सगजयाइ^२ समइय^३ छेअ^४ चउ^५ दु^६ नि^७ परिहारे^८ ॥

केवल्लदुगि^१ दोचरिमा^२ जयाइ^३ नव^४ मइसुओहि^५ दुगे^६ ॥२१॥

अड^१ उवसमि^२ चउ^३ वेअगि^४ खइए^५ इकार^६ मिच्छतिगि^७ देसे^८ ॥

सुहुमेअ^१ सठाणं^२ तेर^३ जोग^४ आहार^५ सुक्काए^६ ॥२२॥

तिर्यचगति में आदि के पांच गुण स्थानक होते हैं ॥ देवता और नारकी में चार गु० होते हैं ॥ मनुष्य गति, साज्र, पचेन्द्रिय, भव्य और त्रस काय में सब गु० होते हैं ॥ एकेन्द्रिय, त्रिकलेन्द्रिय, पृथ्वीकाय, अपकाय, और वनस्पति काय में दो दो गु० होते हैं ॥ गतित्रस और अभव्यमें एक गु० होता है ॥ १६ ॥ तीन वेद और तीन कपाय में नव गु० होते हैं ॥ लोभ में दश गु० होते हैं ॥ अवगति मार्गणा में चार गु० होते हैं ॥ अज्ञानत्रिक में दो या तीन गु० होते हैं ॥ अक्षुदर्शन, अक्षुदर्शन में प्रथम के बारह गु० होते हैं ॥ यथाख्यात चारित्र में अन्त के चार गु० होते हैं ॥ २० ॥ मनःपर्यवज्ञान में प्रसत्तादि सात गु० होते हैं ॥ सामायिक और छेदोपस्थापनीय चारित्रमें प्रसत्तादि चार गु० होते हैं ॥ परिहार विशुद्धि में प्रसत्तादि दो गु० ॥ केवलद्विकमें अन्त के दो गु० और मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञानद्विक में अविरति आदि नव गु० होते हैं ॥ २१ ॥ औपसमिक सम्यक्त्व में अविरतादि आठ गु० हैं ॥ वेदक सम्यक्त्व में चार गु० चौथे से सात मे तक ॥ ज्ञायिक सम्यक्त्व में ग्यारह गु० ॥ मिथ्यात्व सास्वादन मिश्र देशविरति और सूक्ष्म संपरायमे अपना अपना एकेक गु० ॥ तीनयोग आहारी और शुक्ल नेत्रभामें तेरह गु० होते हैं ॥ २२ ॥

असन्निसु पदम दुग् पदमतिलेसासु छच्च दुसु सत्त ।

पदमतिम दुग् अजया अणहारे मग्गयासु गुणा ॥ २३ ॥

सच्चे अर मीम असच्च मोममण वय पिउन्नि आहारा ।

उरल मीसा कम्मण डअजोगा कम्म अणाहारे २४ ॥

नरगइ पणिदि तस तुण अचख्खु नर नपु कसाय सम्मदुगे ।

सन्नि छलेसा हारग भन मइ सुअ श्रोहि दुगिसव्वे ॥ २५ ॥

तिरि इत्थि अजय सासण अनाण उपसम अभव्व मिच्छेसु ।

तेराहार दुगुणा ते उरल दुगूण मुरनिरए ॥ २६ ॥

असत्ती में प्रथम के दो गु० ॥ प्रथम को छे तीन लेश्या मे छे गु० ॥ दो लेश्या (तेजोपद्म) में छान गु० ॥ अनाहारक मार्गणा में आदि और अत के दो गु० और अविरति गु० एव पाच गु० होते हैं ॥२३॥ मार्गणापि योग सत्यमन० असत्यमन० मिश्रमन० और असत्य मूषामनयाग (व्यवहार) एव चार, वचन, वैक्रिय, काय योग, आहारककाय० औदारिक काययोग एव तीन मिश्रकाययोग तथा कर्मणकाययोग एव १५ योग ॥ अनाहारकमार्गणा में कामण काययोग होता है ॥ २४ ॥ मनुष्य, पंचेन्द्रिय, प्रसकाय, काययोग अचक्षुद० पुरुषवेद, नपुसकवेद, कषाय, सम्यक्त्वद्विक (ज्ञायिक, ज्ञयाप०) सज्ञो, छे लेश्या, आहारो, भव्य, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, और अवधिद्विक में सबयोग होते हैं ॥२५॥ तियवर्गति, स्त्रीवेद, अविरति, सास्वादन तीन अज्ञान, उपशम सम्य० अभव्य और मिथ्यात्य में आहारकद्विक विना तेरह योग होते हैं ॥ देवता और नारकी में औदारिकद्विक विना पूर्वोक्त ग्यारह योग होते हैं ॥ २६ ॥

छे आवश्यक नियुक्ति मे पृ० ३३८१ में भद्रबाहु स्वामी लिखते हैं कि सम्यक्त्व की प्राप्तिमें समलेश्यायें होती हैं, चारित्रकी प्राप्ति पिछली तीन शुद्ध लेश्यामं होती है परंतु चरित्र प्राप्त होनेपर अ य कोटभी लेश्या आसक्ती है,

कम्मु रलदुगंथावरि ते सविउव्विदुगपंच इगि पवणे ।

छ असन्नि चरिमवइजुअ ते विउव दूगूणचउ विगले ॥२७॥

कम्मु रलमीस विणुमण वइ समइअ छेअ चखु मणनाणे ।

उरल दुगकम्मपडमंतिम वण वय केवल दुगंमि ॥२८॥

मण वइ उरला परिहारि सुहुमि नव ते उ मीसि स विउव्वा ।

देसे स विउव्विदुगा सकम्मुरलमीसअहखाए ॥२९॥

ति अनाण नाणपण चउ दंसण वार जिअ लखणवओगा ।

विणु मणनाण डकेवलनव सुर तिरि निरिय अजएसु ॥३०॥

वायु सिवाय चार स्थावर मार्गणा में तीन योग औदारिक द्विक और कार्मण ॥ एकेन्द्रिय जाति और वायुकाय में वैक्रियद्विक सहित पांच योग ॥ असंज्ञि मार्गणामें पूर्वोक्त पांच और व्यवहार वचनयोग एवं छे योग ॥ और वैक्रियद्विक विना पूर्वोक्त चार योग विकलेन्द्रियमें ॥२७॥ मनयोग, वचनयोग, सामायिक, छेदोपस्थापनिय, चक्षुदर्शन और मनः पर्यवज्ञान में कार्मण और औदारिक मिश्र सिवाय तेरह योग और केवलद्विकमें औदारिकद्विक कार्मण काययोग और मन वचन के आदि तथा अन्त के योग होते हैं ॥२८॥ परिहार विशुद्धि और सूक्ष्म संपराय चारित्र में मन योग ४ वचनयोग ४ और औदारिक काय एवं नव योग होते हैं ॥ वैक्रिय काययोग सहित दश योग मिश्र में होते है ॥ वैक्रियद्विक सहित ग्यारह योग देशविरति में होते है । कार्मण और औदारिक मिश्र सहित ग्यारह योग यथाख्यात में होते हैं ॥ २६ ॥ मार्गणा विषे उपयोग तीन अज्ञान, पांच ज्ञान और चार दर्शन एवं १२ उपयोग जीव के लक्षणरूप है, मनःपर्यवज्ञान और केवलद्विक विना नव उपयोग देवता, तिर्यच, नारकी और अविरति में होते हैं ॥३०॥

१ ३ ३ १ १ १ १ १०
 तम लोअ वेअ सुक्का हार नर पसिदि सन्नि मयि सव्वे ॥

नयणे मर पण लेना कमाय दमकेल दुग्णा ॥३१॥

चउरिदि अमन्नि दुअन्नाण उ दम इग वि ति यापेर अचक्कु ॥

विद्यानाण द सण्डुग अनाणतिगि अमधि मिच्छदुगे ॥ ३२ ॥

केवल दुगे निअदुग नव तिअ अनाण विणु खइअ अह खाए ॥

द सणनाणतिग देमि मीसि अनाणमीसत ॥ ३३ ॥

मगनाण चरुतु वज्जा अणहारे तिन्निद म चउनाण ॥

चउनाण सजमोवसम वेअगे ओहि द से अ ॥ ३४ ॥

असकाय, योग ३ वेद ३ शुक्नलेरया आहारी, मनुष्याति, पंचेन्द्रियज्ञानि, संज्ञा और अल्प माग नामे अथ उरयोग हात है ॥ अक्षुदर्शन अथपु दर्शन पाष लेरया और कपाय मार्गनामे करजद्विक सिधाय दश उरयोग हात है ॥ ३१ ॥ चौरिन्द्रिय और अमंगी मार्गनामे दो अज्ञान और दो दर्शन हात है ॥ पचेन्द्रिय, चेरिन्द्रिय, तरिन्द्रिय और ग्यावर मार्गनामे अक्षुदर्शन बिना तीन उरयोग हात है और तीन अज्ञान दो दर्शन एक पाँच उरयोग, तीन अज्ञान, अमज्य और मिध्याएद्विक (मिध्याएव नाशदान) में होता है ॥३२॥ केवलद्विकमें श्रावयोग होता है ॥ जापिक सम्प ० और यथाभ्यास वा ० में तीन अज्ञान बिना उप उरयोग हात है ॥ दश विरति में तीन दर्शन तीन ज्ञान होते है ॥ मिथ मार्गना में पूर्वोक्त छे उरयोग परतु ज्ञान, अज्ञान विहित है ॥ ३३ ॥ मनपयंम और अक्षुदर्शन बिना दश उरयोग अनाहारा में हात है ॥ तीन दर्शन और चार ज्ञान एव ३ उरयोग चार ज्ञान, चार मगन, अज्ञान सम्प ० और वेदक सम्प ० की अक्षुदर्शन में हात है ॥ ३४ ॥

दो^२ तेर^{१३} तेर^{१३} वारस^{१०} मणे^५ कमा^५ अह^५ दुचउ^५ चउ^५ वयणे ॥

चउ^५ दु^२ पण^५ तिन्नि^३ काये^१ जिअ^६ गुण^३ जोगो^३ वओग^५ अन्ने ॥ ३५ ॥

छसु^१ लेसा^१ सटाण^१ एगिंदि^१ असन्नि^१ भू^१ दग^१ वरोष्ठ ॥

पढमा^५ चउरो^३ तिन्निउ^३ नारय^३ विगलगि^३ पवरोसु ॥ ३६ ॥

अहखाय^१ सुहुम^१ केवल^१ दुगि^१ सुक्का^१ छवि^१ सेसटाणे^१ ॥

नर^१ निरय^१ देव^१ तिरिआ^१ थोव^१ दु^१ असंख^१ रांत^१ गुणा ॥ ३७ ॥

पण^१ चउ^१ ति^१ दु^१ एगिंदि^१ थोवा^१ तिन्नि^१ अहिया^१ अणंत^१ गुणा ॥

तस^१ थोव^१ असंखगी^१ भूजल^१ निल^१ अहिय^१ वण^१ रांता ॥ ३८ ॥

अन्य आचार्य मनयोग में जीवस्थान दो, गुणस्थान १३ चोग १३ उ-
पयोग १२, वचनयोगमें जीव० = गु० दो, योग चार उपयोग चार, काय
योगमें जीव० ४ गु० दो. योगपांच और उपयोगतीन मानते हैं ॥३५॥
मार्गणा विषय लेश्या छे, लेश्या मार्गणा में अपनी अपनी लेश्या ॥ एके-
न्द्रिय, असंज्ञि, पृथ्वीकाय अप्पकाय और वनस्पतिकायमें प्रथमकी चार
लेश्यानारकी, विकलेन्द्रिय, तेउकाय और वाउकाय में तीन लेश्या ॥३६॥
यथाख्यात चा० सूक्ष्म संपराय चा० और केवलद्विकमें शुक्ल लेश्या होती
है ॥ वाकाशेष ४१ मार्गणामें छेष्टों लेश्या हातीहै ॥ अल्पाबहुत्व सबसे
स्तोक मनुष्य, नारकी असंख्यात गुणा, देवता अस० गुणा और तिर्यच
अनन्त गु० ॥ १ ॥ ३७ ॥ पचेन्द्रिय सबसे स्तोक चौरिन्द्रिय, तेरेन्द्रिय,
चेरिन्द्रिय अनुक्रम से परस्पर एकेकसे अधिक और एकेन्द्रिय अनंतगुणा
॥ २ ॥ सबसे स्तोक त्रस अग्नि काय असं० गुणा, पृथ्वीकाय विशेषा-
धिक, अप्पकाय वि० वाउकाय वि० और वनस्पतिकाय अनन्त
गुणा ॥ ३ ॥ ३८ ॥

❀ इसके लिये देखो गाथ १६-२२-२५-२८-३१ में क्या लिखा है.

मण वयण काय जोगी योवा अमस्रगुण अणत गुणा ॥

पुरिसा थोवा इत्यो सर गुणा एत गुणा कीवा ॥ ३९ ॥

माखी कोही मायी लोभी अहिअ मण नाणिणो थोवा ॥

ओहि असत्वा मइमुअ अहिअ सम अमप विमगा ॥ ४० ॥

केवलीणो एतगुणा मइ मुअ अन्नाखि एतगुणतुला ॥

मुहुमा थोवा परिहार सम अहखाप सखगुणा ॥ ४१ ॥

ऐअ समइप सत्ता देम असख गुण एतगुण अनपा ॥

थोव अमग दुणता ओहि नयण केवल अचक्कु ॥ ४२ ॥

मनयोगी स्तोत्र, पंचयोगी अम ० गुणा, काययोगी अणत दुणा
 ॥ ४ ॥ सबसे श्लोक पुरुषवेद स्त्रीवेद स० गुणी और नपुम५ वेद अनंत
 गुणा ॥ ५ ॥ ३६ ॥ सबसे श्लोक मानी मोधी विरो ० मयी विरो ० लोभी
 विरोधाधिक ॥ ६ ॥ सबसे श्लोक मापयंमहाती, अपपितानी, अस०गु०
 मति भुव शानी परस्पर तुल्य अपवि मे पि ० विभग शानो अम ० गु ०
 केवलशानी अणत गु० मति भुव शानी अणत दु ० और परस्पर तुल्य
 ॥ ७ ॥ सबसे श्लोक मूरम मंतरायवा ० पविदारविगुदधा ० म ० गु ०
 दधा मरवा ० स ० गु ० ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ऐदोरात्यावनीपवा ० म ० गु ०
 सामाधिकवा ० म ० गु ० देरादिरठी वा ० अम ० ० और अदिरवि अणत
 गु ० ॥ ८ ॥ सबसे श्लोक अरविदरांती, अणुदरांती, अम ० गु ० केवल
 दरांती अनंत गु ० अणु दरांती अणत गु ० ॥ ६ । ४ ॥

पच्छाणु पुव्विलेसा थोवा दोअसंख णंत दो अहिआ ॥

अभविअरथोवणंता सासण थोवोवसम संखा ॥ ४३ ॥

मीसासंखा वेअग असंखगुण खड्अ मिच्छ दुअणंता ॥

सन्निअरथोवणंता णहारथोवे अरअसंखा ॥ ४४ ॥

सव्वजिअठाण मिच्छे सग सासणि पण अपज्ज सन्नि दुगं ॥

सम्मे सन्नि दुविहो सेसेसु सन्नि पज्जत्तो ॥ ४५ ॥

मिच्छदु गि अजय जोगाहारग दुगूणाअपुव्व पणगेउ ॥

मणवय उरल स विउव्वि मीसि सविउव्वि दुग देमे ॥ ४६ ॥

सबसे स्तोक शुक्लेशी, पद्मलेशी अस० गु० , तेजोलेशी असं० गु०
 कापोतलेशी, अनन्त गु० नीललेशी त्रिशे० कृष्णलेशी विशे० ॥ १० ॥
 सबसेस्तोक अभव्य, भव्य अनन्त गु० ॥ ११ ॥ सबसे स्तोक सास्वादन
 सम्यक्त्वो, उपशम सम्य० स० गु० ॥ ४३ ॥ मिश्रदृष्टि सं० गु० क्षयो-
 पशमसम्य० अस० गु० क्षाधिकसम्य० अनन्तगुणा, मिथ्यात्वी, अनन्त
 गु० ॥ १२ ॥ सबसे स्तोक संज्ञि असंज्ञि अनन्त गुणा ॥ १३ ॥ सबसे स्तोक
 अनाहारी, अहारी असंख्यात गुणा ॥ १४ ॥ ४४ ॥ गुणस्थान विषे जीव-
 स्थान मिथ्यात्व गु० में सब जीव स्थान ॥ पांच अपर्याप्ता और संज्ञिद्विक
 एवं ७ जीवस्थान सास्वादन गु० में होते हैं ॥ अविरति स० गु० मेंसंज्ञि
 द्विक होता है और शेष गुणस्थानों में एक संज्ञि पर्याप्ता होता है ॥ ४५ ॥
 गु० योग मिथ्यात्वाद्विक और अविरति स० गु० आहारकद्विक बिना तेरह
 योग होते हैं ॥ अपूर्वादि पांच गु० मे मन ४ वचन ४ और औदारिक
 काय एवं ६ योग होते है ॥ वैक्रिय काययोग सहित दश योग मिश्र गु०
 में होते हैं और देशविरति गु० में वैक्रिय द्विक सहित ग्यारह योग होते
 हैं ॥ ४६ ॥

संख्या	मार्गिणा ६० के नाम	जीवा के भेद १४	गुणस्थान १४	योग १५	उपयोग १२	क्षेत्रया ६	अल्पा बहुत्व	क्रमशः अंक
१	देवगति	०	४	११	६	६	अस० गु०	३
२	मनुष्यगति	३	१४	१५	१०	६	स्तोक	१
३	तिर्यचगति	१४	५	१३	६	६	अनत गु०	४
४	नरकगति	२	४	११	६	३	अस० गु०	०
५	पक्षेन्द्रिय	४	०	५	३	४	अनत गु०	५
६	घेरिन्द्रिय	०	०	४	३	३	विशेषा	४
७	तेरिन्द्रिय	२	०	४	३	३	विशेषा	३
८	घोरिन्द्रिय	२	०	४	४	३	विशेषा	२
९	पचन्द्रिय	४	१४	१५	१२	६	स्तोक	१
१०	पृष्ठीकाय	४	०	३	३	४	विशेषा	३
११	अन्तरकाय	४	२	३	३	४	विशेषा	४
१२	तन्त्रकाय	४	१	३	३	३	अस० गु०	२
१३	वायुकाय	४	१	५	३	३	विशेषा	५
१४	धनस्पतिकाय	४	०	३	३	४	अनत गु०	६
१५	प्रमकाय	१०	१४	१५	१०	६	स्तोक	१
१६	मनयोगी	२	१३	१५	१२	६	स्तोक	१
१७	दधनयोगी	५	१३	१५	१२	६	अस० गु०	०
१८	पापयोगी	१५	१	१५	१३	६	अनत गु०	३

१६	पुरुषवेद	२	६	१५	१२	६	स्तोक	१
२०	स्त्रीवेद	२	६	१३	१२	६	संख्या गु.	२
२१	नपुसंकवेद	१४	६	१५	१२	६	अनंत गु	३
२२	क्रोधकषायी	१४	६	१५	१०	६	विशेषा	२
२३	मानकषायी	१४	६	१५	१०	६	स्तोक	१
२४	मायाकषायी	१४	६	१५	१०	६	विशेषा	३
२५	लोभकषायी	१४	१०	१५	१०	६	"	४
२६	मतिज्ञानी	२	६	१५	७	६	असं. गु.	३
२७	श्रुतज्ञाती	२	६	१५	७	६	तुल्य	४
२८	अवधिज्ञानी	२	६	१५	७	६	असं. गु.	२
२९	मनःपर्यवज्ञानी	१	७	१३	७	६	स्तोक	१
३०	केवलज्ञानी	१	२	७	२	१	अनंत. गु.	६
३१	मतिअज्ञानी	१४	३	१३	५	६	"	७
३२	श्रुतअज्ञानी	१४	"	१३	५	६	तुल्य	८
३३	विभगज्ञानी	२	"	१३	५	६	असंख्य गु.	५
३४	सामायिक चा०	१	४	१३	७	६	संख्य गु.	५
३५	छेदोपस्थापनीय	१	४	१३	७	६	"	४
३६	परिहार विशुद्धि	१	२	६	७	६	"	२
३७	सूक्ष्म सपराय	१	१	६	७	१	स्तोक	१
३८	यथाख्यात०	१	४	११	६	१	संख्य गु.	३
३९	देशविरति	१	१	११	६	६	असं. गु.	६
४०	अविरति	१४	४	१३	६	६	अनंत गु	७
४१	चक्षुदर्शन	३	१२	१३	१०	६	अस गु.	२
४२	अचक्षुदर्शन	१४	१२	१५	१०	६	अनंत गु०	४

४३	अधधिदर्शन	२	६	१५	७	६	स्तोक	१
४४	केवलदर्शन	१	२	७	२	१	अनन्तगु	३
४५	कृष्णलेशी	१४	६	१५	१०	१	विशेषा	६
४६	नीललेशी	१४	६	१५	१०	१	विशेषा	५
४७	कापोतलेशी	१४	६	१५	१०	६	अनन्तगु	४
४८	तेजोलेशी	३	७	१५	१०	१	अस गु	३
४९	पद्मलेशी	२	७	१५	१०	१	अस गु	२
५०	शुक्ललेशी	२	१३	१५	१०	१	स्तोक	१
५१	भन्व	१४	१४	१५	१२	६	अनन्तगु	२
५२	अभन्व	१४	१	१३	५	६	स्तोक	१
५३	वेदकसम्यक्त्व (त्रयसपराम)	२	४	१५	७	६	अस गु	४
५४	ज्ञायिकसम्य	२	११	१५	६	६	अनन्तगु	५
५५	रूपमशासम्य०	२	८	१३	७	६	सख्यगु	२
५६	मिभट्टि	१	१	१०	६	६	सरयगु	३
५७	सास्वादन	७	१	१३	५	६	स्तोक	१
५८	मिध्यात्व	१४	१	१३	५	६	अनन्तगु	६
५९	सहि	२	१४	१५	१२	६	स्तोक	१
६०	असहि	१२	२	६	४	४	अनन्तगु	०
६१	आहारी	१४	१३	१५	१२	६	असंगु०	०
६२	अण्णाहारी	८	५	१	१०	६	स्तोक	१



साहारदुग^{१३} पमत्ते^{१५} तेविज्ज्वाहार मीस विणु इअरे ॥

कम्भु रल दुगं^२ तज्ञम मण वयण सजोगि न अजोगि ॥ ४७ ॥

ति अनाण दुदंसाइम^५ दुगे अजइ देसि नाण^३ दंस तिगं ॥

ते मीसि मीसा समणा जयाइ केवल दु अंत डुगे ॥ ४८ ॥

सासण भावे नाणं विज्ज्वाहारगे उर मिसंसं ॥

नेगिंदिसु सासाणो नेहाहिगयं सुयमयंपि ॥ ४९ ॥

छसु सव्वा तेउ तिगं इगि छसु सुक्का अजोगि अल्लेसा ॥

बंधस्स मिच्छ अवरिइ कसाय जोगत्ति चउ हेऊ ॥ ५० ॥

आहारकद्विक सहित तेरहयोग प्रमत्त गु० में होते हैं ॥ वैक्रियमिश्र तथा आहारक मिश्र विना ग्यारह योग अप्रमत्त गु० में होते हैं ॥ कर्मण-काय औदारिकद्विक और मन तथा वचन केशादि, अन्तके दो दो योग एवं ७ योग सयोगी में होते हैं और अयोगी गु० में याग नहीं होते ॥ ४७ ॥ गु० उपयोग पहिले के दो गु० में तीन अज्ञान और दो दर्शन हांते हैं ॥ अविरति और देशविरति गु० तीन ज्ञान और तीन दर्शन हांते हैं । मिश्र गु० में अज्ञान मिश्रित होता है ॥ मन'पयेव ज्ञान सहित सात उपयोग प्रमत्तादि सात गु० में होते हैं ॥ और अन्त के दो गु० में केवलद्विक होता है ॥ ४८ ॥ सिद्धांत का मन्तव्य सास्वादन अवस्था में सम्यग्ज्ञान वैक्रिय शरीर बनाते तथा आहारक शरीर बनाते समय औदारिक मिश्र और एकेन्द्रिय जीवों में सास्वादन गु० का अभाव ये तीन बातें सिद्धांत वाले मानते हैं परन्तु इस ग्रन्थमें इसका अधिकार नहीं है ॥ ४९ ॥ गु० लेश्या छे गु० में सब लेश्याएं होती हैं ॥ अप्रमत्त गु० तीन (तेजो० प० शु०) होती हैं औरअपूर्वादि छे गु० में शुक्ल लेश्या हांता है ॥ आयोगी अलेशी होता है कर्म बंध के चार हेतु मिथ्यात्व, अविरात, कषाय और योग ॥ ५० ॥

अभिगहित्र^१ मणभिगहित्रा^२ भिनिवेशिय^३ ससङ्ग^४ मणाभोग^५ ॥

पणमिच्छ^६ वार^{१२} अविरेड^१ मण^५ करणा^६ निअमु^६ छ^६ जिअ^६ चहो ॥५१॥

नव^६ सोल^{१६} कमाया^{२५} पनर^{१५} जोग^{५७} इय^{५७} उत्तराउ^{५७} सगनना ॥

इग^१ चउ^२ पण^६ तिगुणोसु^४ चउ^१ ति^२ ड^३ इग^४ पच्चओ^५ वधो ॥ ५२ ॥

चउ^१ मिच्छ^२ मिच्छ^३ अविरेड^१ पच्चइआ^१ साय^२ सोल^३ १६^३ पणतीसा^३ २५॥

जोग^{६५} त्रिणु^{६५} ति^{६५} पच्चइआ^{६५} हारग^{६५} जिण^{६५} वज्ज^{६५} सेसाओ ॥ ५३ ॥

अभिमाहिक, अनाभिमाहिक, आभिनिवेशिक, साशयिक और अनाभोग ॥ एव पाच मिथ्यात्व ॥ मन और पाच इन्द्रिय इन छे को नियम में न रखना तथा पृथग्यादि छे काय का बध करना एव वारह अविरत ॥ ५१ ॥ नवनोकपाय और १६ कपाय एव पच्चोस कपाय और पन्द्रह योग एवम उत्तर भेद ५७ है ॥ प्रथम गु० में मूत्त चार बध हेतु० साम्यानादि चार गु० में तीन बध हेतु मिथ्यात्वटला ॥ प्रमत्तादि पाच गु० में दोबन्ध हेतु ॥ अविरतटला ॥ उपशातादि तीन गु० में एक योग प्रत्ययिक बध होता है और अयोगी अथ बध ॥ ५२ ॥ १२० प्रकृत विषे मूल बध हेतु, सातावेदनी चारों हेतुओं से बधती है सास्वादन गु० में जिन सोलह प्र० का बधविच्छेद होता है वह मिथ्यात्व प्रत्ययिकी है ॥ केवल मिथ्यात्व से ही है बधती है पैंतीस प्र० जिनका बध विच्छेद भिन्न० अवि० देश० गु० में होता है वे मिथ्यात्व, अविरति, प्रत्ययिकी है इन प्रकृतियों को मिथ्यात्व में वरतता हुआ जीव मिथ्यात्व से बधता है और दूसरे आदि गु० में अविरति से बधता है पूर्वोक्त ५२ और जिन नाम, अहारक द्विक विना शेष ६५ प्रकृति का बध तीन बध हेतुओं (मि० अ० क०) से होता है क्योंकि पहले गु० में रहा हुआ मिथ्यात्व से दूसरादि ४ गु० में अविरत से छट्टादि ४ गु० में कषायसे बध होता है ॥ जिननाम बध का कारण सम्यक्त्व और अहारक द्विक का समय माना है इसलिये तीन प्रकृतियों की गणना कपाय हेतुओं में नहीं की ॥ ५३ ॥

५५ ५० ४३ ४६ ३६ २६ २४ २२
 पणपन्न पन्ना तिअ छहिअ चत्त गुणचत्त छ चउ उगवीसा ॥

६६ १० ६ ६ ७
 सोलम दम नव नव सत्त हेउणो नउ अजोगिमि ॥५४॥

५५ ५० ५
 पणपन्न मिच्छि होरग दुग्गुण सासाणि पन्न मिच्छ विणा ॥

३ १ ४ ४३ ४६
 मीम दुग कम्म अण विणु तिचत्त मीसे अह छ चत्ता ॥५५॥

३ १ १ १
 महु मीस कम्म अजए अविरइ कम्मुरल मीस वि कसाए ॥

३६ २६ २
 मुत्तु गुण चत देसे छविस सहार दु पमत्ते ॥५६॥

गु० विषे उत्तर बंध हेतु प्रथम गु० ५५, दूजे गु ५०, तीजे गु० ४३ चोथे गु० ४६, पांचवे गु० ३६, छठे गु २६. सातवे गु २४, आठवे २२ नवमें १६, दश १०, ग्यारहमे, चारहवे ६, तेरहवे ७, चौदहवे गु० बंध ॥ ५४ ॥ आहारद्विक विना ५५ बन्ध हेतु मिथ्यात्व गु० में होते हैं ॥ मिथ्यात्व पांच विना सास्वादन गु० में ५० बन्ध हेतु होते हैं ॥ औदारिक मिश्र और वैक्रिय मिश्र एव मिश्रद्विक तथा कर्मण काययोग और अनन्धानुबन्धी कषाय एवं ७ विना ४३ बंध हेतु मिश्र गु० में होते हैं ॥ अब ४६ का बंध हेतुकहते हैं ॥ ५५ ॥ मिश्रद्विक और कर्मण काययोग सहित ४६ का बंध हेतु ४६ का बंध हेतु अविरति मन्य० गु० में होता है ॥ त्रसकाय की अविरति, कर्मण काय योग औदारिक मिश्र और अप्रत्याख्यानी कषाय एवं ७ विना ३६ बंधहेतु देशविरति गु० में होते हैं ॥ और प्रमत्त गु० में ग्यारह अविरति चार प्रत्याख्यानी कषाय एवं १५ बंध हेतु नहीं है और आहारद्विक का बंध है ॥ इसलिये २६ बंध हेतु है ॥ ५६ ॥

क्षपचसंग्रहद्वार ४ गाथा १६ मे जिननाम, आहारक द्विक तीन प्रकृतियों को कषाय हेतु माना है परन्तु यहां इन तीन प्रकृतियों को कषाय हेतुक नहीं कहा परन्तु यह निर्विवाद सिद्ध है कि सब कर्म प्रकृति और प्रदेश कारणता है और स्थिति तथा अनुभाग बंध में कषायकी कारणता है इसका विशेष विचार पंचसंग्रह मलयगिरिटी का मे देखने योग्य है ॥

अविरद् इगाग^{११} तिरुसायज्ज^४ अपमत्ति^२ मीस दुग^२ रहिया ॥

चउवीस^{२४} अपुव्वे^१ पुण^{१२} दुवीस^१ अविउव्वि^१ आहारे ॥ ५७ ॥

अछहास^६ सोलवायरि^{१६} सुहुमे^{१०} दसवेअ^३ सजलणतिविणा ॥

खीणुवसतिअलोभा^१ सजोगिपुव्वुत्त^३ सगं^३ जोगा ॥ ५८ ॥

अपमत्त^३ ता सत्तट्टु^५ मीस^३ अपुव्ववायरा^३ सत्त ॥

नघड^१ छस्सुहुमो^१ एगमुवरिमा^१ नघगाजोगी ॥ ५९ ॥

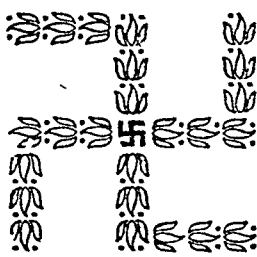
आसुहुम^५ सतुदए^५ अट्टवि^३ मोह^३ विणु^३ सत्त^३ खीणमी ॥

चउ^४ चरिम^५ दुगे^५ अहउसते^५ उवसति^५ सत्तु^५ दए ॥ ६० ॥

अप्रमत्त गु० में आहारकमिभ और वैक्रियमिश्र विना २४ व घ हेतु है ॥ अपूर्व्य करण गु० में आहारक और वैक्रिय काययोग विना २० का व घ हेतु है ॥ ५७ ॥ दाम्यादि जट्त्वेना सोलह व घ हेतु बादर सपराय गु० में होते है ॥ तीन वेद और मज्जल विना दश व घ हेतु सूक्ष्म सपराय गु० में होते हैं ॥ और सज्वल त्रिफविना नव व घ हेतु उपशात और क्षीणमाह गु० में होते है सयागी गु० में पूर्वोक्त सातयोग हाते है ॥ ५८ ॥ गु० विषे मूल प्रकृति व घ प्रथम गु० से अप्रमत्त गु० पर्यंत मात , आठ कर्म बन्ध है ॥ मिश्र अपूर्व करण, और बादर सपराय गु० में सात कर्म का व घ है ॥ सूक्ष्म सपराय गु० में छे कर्म का व घ है ॥ ऊपर के तीन गु० (११-१२-१३) में एक कर्म का व घ है और अयोगी गु० अत्र धक है ॥ ५९ ॥ उदय सत्ता सूक्ष्म सपराय गु० पर्यंत आठों कर्म क मत्ता और उदय है ॥ मोहनीय कर्म विना सात कर्म की सत्ता और उदय क्षीण मोह गु० में होती है ॥ अन्तके द्वा गु० में चार कर्मकी सत्ता और उदय है और उपशात मोह गु० में आठ कर्म की सत्ता और सात कर्म का उदय होता है ॥ ६० ॥

सास्वादन, मिश्र, अपूर्वकरण, अनिविरति, मूद्धम संपराय' उपशांत मोह क्षीणमोह और सयोगी इन आठ गु० में किसी समय जीव होते हैं और किसी समय नहीं हांते तथा किसी समय एक जीव होता है और किसी समय अनेक जीव होते हैं जिसके भंग ६५६१, हैं ॥

संयोग	गुणस्थान आश्रयी भांगा,	एकजीव आ- नेकजीव आ- श्रयी भांगा	जीव तथा गु- णस्थान आ- श्रयी परस्पर भांगा
असयोगी	१	१	१
एक संयोगी	५	६	१६
दो "	२५	४	११२
तीन "	५६	५	४४५
चार "	७०	१६	११२०
पांच "	५६	३२	१७६२
छे "	२५	६४	१७६२
सात "	५	१२५	१०२४
आठ "	१	२५६	२५६
कुल भांगा	२५६	५११	६५६१



वीए केवल जुअल सम्म दाणाह लद्धि पण चरण ॥

तडए सेसुअयोगा पण लद्धि सम्म विरइ दुग ॥६६॥

अन्नाण ममिद्वत्ता सज्जम लेसा कसाय गइ वेआ ॥

मिच्छ तुरिए भव्वा भज्जत्त निअत्त ररिणामे ॥६६॥

चउ चउ गइसु मीसग पपिणासु दएहि चउ सखइहिं ॥

उउसम जुएहि वा चउ केवलि परिणाम्दय खडए ॥ ६७ ॥

खय परिणामे मिद्धा नराण पण जोगु वसम सेटिण ॥

इअ पनर सन्नि वाइअ भेया वीस असमणियो ॥ ६८ ॥

ज्ञायिक भाव नौ भेद, केषलज्ञान, केषल दर्शन ज्ञायिकसम्य० दा
नादि पाच लब्धी और ज्ञायिक चरित्र ॥ ज्ञयोपशमिक भावके १८ भेद
केवलद्विक बिना १० उपयोग, दानादि पाच लब्धी, ज्ञयोपशम सम्य०,
विरतिद्विक देशविरति और सब विरति ॥ ६५ ॥ औदयिक भाव के २१
भेद, अज्ञान, असिद्धरथ, असबम, छे लेश्या, चार कषाय, चार गति,
तीन वेद और मिष्यात्व परिणामिक भाव तीनभेद, भव्यत्व, अभव्यत्व
और औषत्व एवम् उत्तर भेद ५३ ॥ ६६ ॥ ज्ञयोप० परिणा० और औद
यिक यह तीन सयोगी भागा चार गति आश्रयि होते हैं ॥ ज्ञायिक भाव
सहित चार सयोगी भागा चार गति आश्रयि चार भेद तथा औषशमिक
सहित चार सयोगी भागा चार गति आश्रयि चार भेद और परिणामिक
औदयिक ज्ञायिक यह तीन सयोगी भागा केवली में होता है ॥ ६७ ॥
ज्ञायिक, और परिणामिक यह दो सयोगी भागा सिद्ध में होता हैं उपशम
श्रेणी वर्तते हुए मनुष्य को पाच सयोगी भागा होता है एवम् छे सानि
पातिक भागोंके १५ भेद होते हैं ॥ शेष २० सानिपातिकभाव शून्य है ॥६ ॥

मोहो वसमो मीसी चउ घाइसु अड्ड कम्मसु असेसा ॥
॥ ६९ ॥

धम्माइ परिणामिय भावे खंधा उदइए वि
मोहनीय कर्म का ही औपशमिक भाव होता है, त्रयोपशमिक भाव चार घातीकर्मोंका होता है। शेष भाव आठ कर्मों के हैं ॥ धर्मास्तिकायादि पांच द्रव्य परिणामिक भाव में होते हैं।

परन्तु अनन्त प्रदेशी स्कथ औदयिक भाव में होता है ॥ ६६ ॥

भांगा २६ स्थापना

वृत्त, कर्म, प्रत्य

१ औप०	त्वा०	त्त्रयो०	औद०
२ "	"	"	परि०
३ "	"	"	औद० "
४ "	त्त्रयो	"	" ४ गतिमें
५	त्वा०	"	" ४ गतिमें
६ औप०	त्वा०	त्त्र०	औ औ प०
उपशम श्रेणी मनुष्य में			

१ औप०	त्त्रायिक०	त्त्रयाप०
२ "	"	औद०
३ "	"	परि०
४ "	त्त्रयो०	औद०
५ "	"	परि०
६ "	औद०	"
७ त्त्रायि	त्त्रयो०	औद०
८ "	"	परि०
९ "	औद०	परि० केवलीमें
१० त्त्रयो०	औद०	परि० ४ गतिमें

१ औपश० त्त्रायिक
२ औप० त्त्रयो०
३ औप० औदयिक०
४ औप० परिणामिक
५ त्त्रायिक. परि. सिद्धमें
६ त्त्रायिक० औद०
७ त्त्रायिक० त्त्रयोप०
८ त्त्रयोप० औद०
९ त्त्रयोप० परि०

सम्माइ चउसु तिगं चउ^३ मावा चउ^४ पणु वसामगु वसते ॥

चउ^४ खीणा पुव्वे तन्नि^३ सेम गुणठाण गेग जिए ॥७०॥

सखिज्जेगमभख परिउ^३ जुउ^३ निय पय जुयतिविह ॥

एवमणतपि तिहा जहन्न मज्झुकसा सव्वे ॥७१॥

लहुमखिअ दुच्चिअ अयोपर मज्झिमत्तु जागुरुअ ॥

जबुदीव पमाणय चउ पल्ल परुणणइ इम ॥७२॥

पल्लाणबड्डिय सलाग पडिसलाग महासलागएखा ॥

जोअण सहसो गाढा सवेइअता ससिह भरिआ ॥७३॥

अधिरति सम्यक्वद्विठ आदि चार गु० में तीन या चार भाव होते हैं । नौ, दश, ग्यारहवे गु० में चार या पाच भाव होते हैं । खीण मोह और अपूर्व करण गु० में चार भाव होते हैं । और शेष गु० में तीन भाव होते हैं ॥ यह भाव एक जीव आश्रयि कहा है ॥७०॥ सन्ध्यात एक है । असरयाते के तीन भेद हैं (१) परित (२) युह (३) निजपदयुक्त अर्थात् असरयातासन्ध्यात् ॥ इसी तरह अनन्ते के भी तीन भेद हैं । इनसबके तीन तीन भेद जघय, मध्यम और उत्कृष्ट एव सर्व २१ भेद होते हैं ॥७१॥ लघुसन्ध्या दो की है ॥ इससे आगे तीन की सन्ध्या से उत्कृष्ट के बीच की सन्ध्याये सब मध्यम सन्ध्याता है ॥ उत्कृष्ट सरया का स्वरूप जम्बूद्विप प्रमाण चार प्यालों की प्ररूपणा से जाना जाता है ॥७२॥ चारप्याले—(१) अनवस्थित (२) शलाका (३) प्रतिशलाका (४) महाशलाका है ॥ चारों प्याले गहरा इमें एक हजार याजन और उचाइ में जम्बूद्वीपकी पक्षपर वेदिका पर्यंत अथवा साठेआठ याजन प्रमाण इसको शिखा सहित सरहों से पूर्ण भरना ॥७३॥

तो दीव दहिंसु इक्कि सरिसवं खिविअ निट्टिए पढमे ॥
पढमं व तदंतं चिय पुंण भरिएतंमि तह खीणे ॥७४॥

खिप्पइसलाग पल्लेगु सरिसवो इअ सलाग खवणेणं
पुण्णो वीओअं तओ पुव्वंपिव तंमि उद्धरिए ॥७५॥

खिणे सलाग तइए एवं पढमेहिं वीअयं भरसु ॥
तेहिं तइअं तेहिय तुरिअं जा किर फुडा चउरो ॥७६॥

पढम ति पल्लुद्धरिआ दीव दही पल्ल चउ सरिसवाय ॥
सव्वोवि एगरासि रुवूणो परम संखिज्जं ॥७७॥

पूर्ण अनवस्थित नरे हुवे प्याले में से एकेक सरसव द्विप समुद्र में डालना चाहिये । जिस द्विप समुद्र में सरसव समाप्त हो जाय उस द्विप समुद्र के बराबर विस्तार वाला अनवस्थित प्याला बनाकर उसे सरसव से भरे फिर उसी तरह एकेक सरसव द्वीप समुद्र में डाल कर इसको भी खाली करने पर एक सरसव सलाक प्याले में डाले । इस तरह एकेक सरसव डालने से जब दूसरा शलाक प्याला भर जाय तब उसे पूर्ववत् उठावे और एकेक सरसव द्वीप समुद्र में डालकर खाली करे । खाली होने पर एक सरसव प्रतिशलाक में डाले । इस तरह अनवस्थित से शलाकको और शलाक से प्रतिशलाकको तथा प्रतिशलाक से महाशलाकको एवं चारों प्यालों को पूर्ण भर देना चाहिये ॥७४॥७५॥७६॥ फिर प्रथमादि तीन प्यालों से द्वीप समुद्र में डाले हुवे सब सरसवों को इकठे करे और चार प्याले भरे हुवे इन सबकी एक राशी अर्थात् ढेरी करे उसमें से एक सरसव न्यून करने पर उसकी जो संख्या हो उसको उत्कृष्ट संख्याता कहते हैं ॥७७॥

रुजुश्रुतु परिता सख लहु अस्स, रामि अन्नासे ॥

जुत्ता सखिज्ज लहु आवलिआ समय परिमाण ॥७८॥

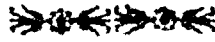
उत्कृष्ट सख्याते में एकरूप मिलाने से जघन्य परित असख्याता होता है ॥ जघन्य परितसख्याते को राशी अभ्यास करने से जघन्ययुक्त असख्याता होता है ॥ जघन्ययुक्त असख्याता एक आवलीकाके समयों का परिमाण है ॥७८॥

पिछली गाथा में असख्याते के चार भेद कह दिये हैं अब उनके शेष भेदों का स्वरूप बतलाते हैं ॥

असख्याता और अनते के मूल तीन २ हैं । उनके जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट करने से १८ भेद होते हैं जिसमें ७१ वीं गाथा में दिखाये हैं ॥ उन छे मूल भेदों में से दूसरे युक्त असख्याते का राशी अभ्यास करने से नौ उत्तर भेदों में से सातवा अस० अर्थात् जघन्य असख्यातासख्यात होता है । जब य असख्याता सख्यात में एकरूप होने से पीछे का उत्कृष्ट अर्थात् उत्कृष्टयुक्त असख्याता होता है । और जघन्य तथा उत्कृष्टयुक्त असख्याते के बीच की सख्या को मध्यम युक्त असख्याता कहते हैं । उक्त छे मूल भेदों में से तासरे अस० अस० का राशी अभ्यास करने से प्रथम का ज० परितअनत होता है । इसमें से एक रूप कम करने पर ७० अस० अस० होता है । ७० ज० क बीच की सख्या का मध्यम अस० अस० कहते हैं ॥

() जघन्य युक्त असख्याते में से एकरूप कम करने से उत्कृष्ट परित असख्याता होता है और, जघन्य परित असख्याता तथा उत्कृष्ट परित असख्याता के बीच की सब सख्याओं को मध्यम परित असख्याता करते हैं ।

शतकनामा पंचम कर्मग्रन्थ



नमिय जिणं ध्रुवबंधो दयसत्ता धाइ पुन्न परिअत्ता ॥

सेअर चउह विवागा बुच्छं वंधविह सामीअ ॥ १ ॥

वन्नचउ तेअ कम्मा गुरुलहु निमिणो वधाय भय कुच्छा ॥

मिच्छ कसाया वरणा विग्घं ध्रुवबंधि सग चत्ता ॥ २ ॥

तणु वंगा गिइ संधयण जाइ गइ खगइ पुविं जिणु सासं ॥

उज्जो आयव परधा तसवीसा गोय वेयणिअं ॥ ३ ॥

जिनेश्वर भगवानको नमस्कार करके ध्रुवबंधी, ध्रुवउदइ, ध्रुवसत्ता, धाती, पुन्य और परावर्तमान प्रकृतियों को प्रतिपत्ति सहित तथा चार प्रकार का विपाक दिखानेवाली प्रकृति, बंध विधि, बंध स्वामित्व और उपशमश्रेणि, क्षपकश्रेणि वगेरह कहूंगा ॥ १ ॥ ध्रुवबंधी ४७ ॥ वरणादि चार (वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श) तेजस शरीर, कार्मण शरीर, अगुरुलघु, निर्माण, उपघात, भय, कुच्छा, मिथ्यात्व मोहनीय, सोलह कषाय, पांच ज्ञान व नव दर्श० और पांच अन्तराय एवम् ४७ ध्रुवबंधी ॥ (जिस गु० तक जिस प्रकृति का बन्ध हो उस गु० तक वह प्रकृति का नित्य अवश्य बंध हो उसको ध्रुवबंधी कहते हैं । एवम् उदय, सत्तादि भावनियम् ॥२॥ अध्रुवबंधी ७३॥ तीन शरीर, तीन उपांग, छे सस्थान, छे सघयण, पांच जात, चारगति, दो विहायोगति, चार आनुपूर्वी, जिननाम, स्वासोस्वास, उद्योत, आतप, पराघात, त्रसवीसक, दो गोत्र, दो वेदनी ॥ ३ ॥

हासाई जुअल दुग वेअ आउ तेवुत्तरी अधुवव धी,
 भगा अणाइ साइ अणत सतुत्तरा चउरो ॥ ४ ॥
 पढम भिअा धुअउदइसु धुअअधिसु तइअवज्ज भगतिग ॥
 मिच्छामि तिन्निभगा दुहावि अधुवातुरिअ भगा ॥ ५ ॥
 निमिण थिर अथिर अगुरुअ सुह असुइ तेअ कम्म चउवन्ना ॥
 नाणतराय दसण मिच्छ धुअ उदय सगवीमा ॥ ६ ॥
 थिरसुभियर विणु अधुववधी मिच्छ विणु मोह धुवव धी ॥
 निदाव धाय मीम सभ पण नेवड अधुवुदया ॥ ७ ॥

हास्यादि दो युगल, तीन वेद और चार आयुष एव ७३ अधुववधी प्र० है ॥ अधुववधी आदि चारों का सादि अनादि चारके भागे कहना ॥ ४ ॥ अधुवोदयी प्र० में पहला और दूसरा भागा अधुववधी प्र० में तीसरा भागा वज के शेष १-२-४ भागा होते हैं ॥ मिथ्यात्व मोहनीय विषे तीन भागों और दोनों प्रकार की अधुव प्र० में बोधा भागा होता है ॥ ५ ॥ अधुवोदयी २७ निर्माण, स्थिर, अस्थिर, अगुरुलघु, शुभ, अशुभ, तेजस, कार्मण, धर्ण, गध, रस, र्परा, पाच ज्ञानाव० पाच अ तराय, चार दूरा० और मिथ्यात्व मोहनीय एव २७ अधुवोदयी ॥ ६ ॥ अधुवोदयी ६५ स्थिर, शुभ इतर अस्थिर, अशुभ एव ४ विना शेष अधुववधी ६६ प्र० मिथ्यात्व विना मोहनीयकर्मको १८ प्र० अधुववधी, निद्रा, उपघात, मिथमोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय एव ६५ प्र० अधुवोदयी ॥ ७ ॥

(१) अनादि अनन्त, (२) अ० सात्, (३) सादि, अनन्त (४) सादि सात्

तस वन्नदीस सग तेअ कम्म धुववंधी सेस वेअतिगं ॥

आगिइतिग वेअणिअं दुजअल सगउरल सासचउ । ८ ॥

खगइ तिरिदुग नीअं धुवसत्ता सम्म मीस मणुयदुगं ॥

विउविवक्कार जिणा उ हारस गुच्चा अयुवसत्ता ॥ ९ ॥

पढमतिगुणेषु मिच्छं निअमा अजयाइ अट्टगे मज्जं ॥

सासाखे खलु सज्मं संतंमिच्छाइ दसगेवा ॥ १० ॥

सासण मीसेसु धुवं मीसं मिच्छाइ नवसु भयणाए ॥

आइदुगे अणनिअमा भइआ मीसाइ नवगंमि ॥ ११ ॥

ध्रुवसत्ता १३० ॥ त्रसभीस, वर्णादिवीस, तेजस सप्तक विना (५ तेजस कार्मण वन्धन और तेजस संघातन, कार्मण संघातन) शेष ४१ ध्रुवबन्धी, तीनवेद, आकृति त्रिक (छे संघयण, छे संस्थान, पांच-लाति) दो वेदनीय, हास्यादि दो युगल, औदारिक सप्तक (औदा० शरीर औ० अंगो, औ० संघा, औ० औ० वंधन, औ० ते, औ० का, औ० ते० का०) स्वास चतुष्क (उस्वास, उद्योत, आतप, पराघात) ॥८॥ दो विहायोगति, तिर्यव द्विक और नीचगोत्र एव १३० ध्रुवसत्ता ॥ अवधु-सत्ता २० ॥ सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, मनुष्यद्विक, वैकिय एकादश, जिननाम, चार आयुष, आहारक सप्तक, और ऊचगोत्र षवं २२ प्र० अस्रसत्ता ॥ ६ ॥ गु० ध्रुवसत्ता ॥ प्रथमते तीन गु० में नियमा मिथ्यात्व मोहनीय होती है, अत्रित्यादि आठ गु० में भजना ॥ सास्वादन गु० में सम्यक्त्व मो० नियमा होती है, मिथ्यात्वादि दश गु० में सम्य० मा० विकल्प से होती है ॥ १० ॥ सास्वादन और मिश्र गु० में मिश्र मो० ध्रुव हाती है. मिथ्यात्वादि ध्रुव गु० में विकल्प से होती है पहिले के दो गु० में अनन्तानुबंधी कणाय नियमा होता है, मिश्रादि नव गु० में भजना से होता है ॥ ११ ॥

आहारग सतग वा सव्वगुणे त्रितिगुणे त्रिणा तित्थ ॥

नोभयसते मिच्छो अत मुहुत भवे तित्थे ॥१२॥

केवल जुवला वरण पण निदा वारमाडम कमाया ॥

मिच्छे ति सव्वघाई चउनाण ति ढसणा वरणा ॥१३॥

सजलण नोकमाया विध इय देमघाडय अग्घाड ॥

पत्तेय तणुड ढाऊ तमपीसा गोअ दुग वन्ना ॥१४॥

आहारक सप्तककी सत्ता सद्य गु० में विकल्प से होती है ॥ दूसरे और तीसरे गु० विना बाकी सद्य गु० में तीर्थकर नामकी सत्ता विकल्प से होती है ॥ आहारक सप्तक और जिन नामकी सत्ता होने पर मिथ्यात्व नहीं होता ॥ तीर्थकर नामकी सत्ता हाते हुवे अन्तर मुहूर्त मिथ्यात्व गु० होता है क्यों कि लुयोपशम को वमके नर में जाता हुवा अन्तर मुहूर्त मिथ्यात्व को स्पर्श करिं तुरंत सम्यक्त्व प्राप्त करे ॥१२॥ सर्व घाती २० “केवलद्विक आवरण, पाच निद्रा, प्रथम के बारह कषाय और मिथ्यात्वमोह नीय एव २० प्र० सर्वघाती हैं” ॥ देशघाती २५ “चार ज्ञानाव० तीन दर्शनाव० सज्वल कषाय ४, नवनोकषाय और पाच अन्तराय एव २५ प्र० देशघाती है” ॥ अघाती ७५ “आठ प्रत्येक प्र०, शरीर अष्टक की ३५ प्र०, चार आयुष्य त्रसवीस, दो गोत्र, दो वेदनी, और वर्णवस्तुक एव ७५ प्र० अघाती है” ॥१३॥१४॥

सुरनर ति गुच्च सायं तसदस तणु वंग वडर चउरंसं ॥

परधामग तिरिआउ वन्नचउ पणिदि सुभखगइ ॥१५॥

वयालपुणपगइ अपढमसंठाण खगइ संघयणा ॥

तिरियदुग असाय निओवघाय इग विगल निरयतिगं ॥१६॥

थावर दस वन्न चउक्क धाइ पणयाल सहिय बासीइ ॥

पाव पयडित्ति दोसुवि वन्नाइ गहा सुहा असुहा ॥१७॥

नामधुववंधीनवगं दंसण पण नाण विग्ध परघायं ॥

भय कुच्च भिच्छ सासं जिण गुण तीसा अपरिअत्ता ॥१८॥

पुन्य प्र० ४२ "देवत्रिक, मनुष्यत्रिक, उच्चगोत्र छातावेदनी, त्रसद शक, पांच शरीर, तीन उपांग, वज्र रूपभनाराच सघयण, समचतु

रख संस्थान, पराघात, उस्वास, आतप, उद्योत, अगुरुलघु,

तीर्थ घर, निर्माण यह समक, तिर्यचायु, वर्णचतुष्क, पचेन्द्रिय, शुभ विहायो गति, एव ४२ पुन्य प्र० है ॥ पाप प्र० ८२ "पांच

संस्थान, अशुभ विहायोगति पांच संघयण, तिर्यचद्विक, असाता वेदनी, नाच गोत्र, उपघात, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, नरकत्रिक,

स्थावरदशक, वर्णचतुष्क, सर्वघाती २० प्र० देशघाती २५ प्र० एव ८२ पाप प्र० है" ॥ वर्णचतुष्क पाप और पुन्य दोनों में लिया

है वह पाप में अशुभ और पुन्य में शुभ समझना ॥१५-१६-१७॥ अपरावर्तमान प्र० २६, नामकर्मकी ध्रुवबंधीनौ प्र० (वर्ण ४,

तेजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, उपघात) दर्शनावर्ण चतुष्क, पांच ज्ञानावरणीय, पांच अन्तराय, पराघात, भय, जुगुप्सा,

भिद्यगत्व, उस्वान और जित नम एकां २६ प्र० अपरावर्तमान है अर्थान् उषके बंध और उद्य में अन्य प्रकृतिका बंध उद्य नहीं

रुक्ता इसलिये इसको अपरावर्तमान प्रकृति कहते हैं ॥१८॥

^{३३} तणुअठ ^३ वैअ ^४ दुजुअल ^{१६} कमाय ^२ उज्जोअ ^६ गोअदुग ^५ निदा ॥

^{२०} तमवी ^४ साउ ^{६१} परिता ^५ खित ^५ विरागाणु ^५ व्वीओ ॥ १९ ॥

^{४०} घणघाड् ^५ दुगोअ ^१ जिणा ^३ तभि ^३ परतिग ^५ सुभग ^५ दुभग ^१ चउ ^१ सास ॥

^{११} जाइतिग ^{७८} जिअ ^५ विरागा ^५ आरु ^५ चउरो ^५ भव ^५ विवागा ॥ २० ॥

^{१२} नाम ^{१२} धुवोदय ^१ चउतणु ^१ वघाय ^५ सहायणिर ^५ जोअतिग ॥

^{३६} पुगल ^५ विरागिब ^५ धो ^५ पदइठिइ ^५ रस ^५ पएसति ॥ २१ ॥

परावर्तमान प्र० ६१ "शरीर अष्टक को ३३ (तेजस कर्मण विना, तीन शरीर, तीन उपांग, छे संस्थान, छे सप्रयण, पाच जाति, चार गति दो स्वगति, चार आनुपूर्वी) प्रकृति, वेद तीन, हास्यादि चार, १६ कषाय उद्यात आतप, गोत्र दो वदनीदो, पाच निद्रा, त्रसदशक, स्थावर दशक आयुष्य चार, एव ६१ प्र० परावर्तमान हे ॥ यह प्रकृतियां अ य प्रकृति योक बध उदय को निवार के अपना ब ध उदय स्थापन करती है, इममे १६ कषाय और पाच निद्रा एव २१ केवल उदय परावर्तमान है और स्थिर, अस्थिर, शुभ अशुभ, यह ४ प्र० कवल ब ध परावर्तमान है शेष ६६ प्र० तदुभय परावर्तमान है ॥ क्षेत्र विपाकी चार आनुपूर्वी क्षेत्र विपाकी हैं ॥ १६ ॥ जीवविपाकी ७= घन घाता ४७ (५ क्षान, ६ दशना ७८ मोहनोय, ५ अतराय) गोत्र द्विक, वेदनी दो, जिननाम, त्रस त्रिक, स्था वरत्रिक, सुभग चतुष्क, दुर्भग चतुष्क, स्वासोस्वास, जातित्रिक, (५ जाति ४ गति, दो स्वगति,) एव ७८ जीवविपाकी है ॥ भव विपाकी - चार अ युष्य भव विपाकी है ॥ २० ॥ पुद्गल विपाकी ३६, नाम कर्म की ध्रुवा दयी १२ (निर्माण, स्थिर अस्थिर, अगुरु शुभ, अशुभ, तेजस कर्मण, वर्ण चार) शरीर चतुष्क (३ शरीर, ३ उपांग, छे सघ ०, छे संस्थान) उपनात, साधारण, प्रत्येक, सद्योतत्रिक (३० आ० ५०) एव ३६ प्र० पुद्गल विपाकी है ॥

०३ २५ २६ २८ २९
 ति पण छ अट्ट नवाहेआ वीसा तीसेग तीस इग नामे ॥
 ६ ७ ७ ३

छ स्सग अट्टति गंधा सेसेसु यठाण मिक्किक्कं ॥२५॥

नामकर्म की प्रकृति के बन्ध स्थान आठ हैं । २३-२५-२६-२८-२९-३०-३१-१ जिसमें छे भूयस्कार, सात अल्पतर, आठ अवस्थित और तीन अवकृतव्य बन्ध हैं । शेष कर्मों का एक एक ही बन्ध स्थान है । विवेचनः-- नाम कर्म की ६७ प्र० हैं (विपाक गंथा ३१ जिसमें पहला २३ का बन्ध यथा वर्ण ४ ते० का अगु० निर्मा० उप० तिर्यच, एके०, औ०

१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
 शरीर, हुँड०, स्या०, अपर्या०, अस्थि०, अशु०, दुर्भ०, अना०,
 २१ २२ २३

अशय, सुद्धम या बादर, साधारण या प्रत्येक यह पहला बंध स्थान । यह एकेन्द्रिय प्रायोग्य, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय मिथ्यास्वी बांधे १ पूर्वोक्त २३ में से नं० १६-१७-१८-१९ को निकालके प्रति पत्ति मिलावे और उस्वा० परा० मिलाने से २५ का दुसरा बंध स्थान पर्याप्ता एकेन्द्रिय और अपर्याप्ता बेरिन्द्रि प्रायोग्य होता है ॥२॥ उद्योत या

आतप मिलाने से २६ का बंध स्थान पर्याप्ता एकेन्द्रिय बांधे ॥३॥ औ० २

४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
 देव० २, पचे०, सम०, उस्वा०, परा०, शुभगति, त्रस, बादर, पर्या०,
 १३ १४ १५ १६
 प्रत्ये०, अस्थि०, अशु, अशय, (या १४-१५-१६ की प्रतिपत्ति)

१७ १८ १९
 सौमा०, सुस्वर, आदेय, और नव ध्रुवगी एजं २८ का त्रधस्थान देवता या प्रथम के चार गु० वाले मनुष्य, तिर्यच बाधते है ॥४॥ जिन नाम मिलाने से २६ का बंध स्थान अविरति सम्य० मनु० देव० में होता है ॥ अथवा पूर्वोक्त २५ में स्वगति, संबयण, सस्थान, औदारिकोपांग मिलावे और एकेन्द्रिय की जगह पंचेन्द्रिय और स्थावर की जगह त्रस मिलाने से २६ का बंध स्थान पर्याप्ता पंचेन्द्रिय तिर्यचको होता है ॥५॥ पूर्वोक्त २८ में आहारक द्विक मिलाने से ३० का बन्ध स्थान अप्रमत संय-

तको होता है तथा वज्ररुषभ० जिन नाम मिलाके और देवद्विक की जगह मनुष्यद्विक मिलाने से ३० का वध स्थान देवता मनुष्य प्रायोग्य बाधे ॥६॥

पूर्वोक्त ३० के वध स्थान में जिन नाम मिलाने से ३१ का वध स्थान देवप्रायोग्य ७-८ गु० वाला बाधे ॥७॥ और अपूर्व करणादि तीन गु० में रहा हुआ साधु एक यश कीर्ति बाधे यह १ का वध स्थान ॥८॥ छे भूयस्कार कहा सो १ का वध स्थान श्रेणी से गिरते होता है इस लिये भूय० नहीं होता । अवक्तव्यवध पहली श्रेणी से गिरता एक यश कीर्ति बाधे वह और दुसरा चप श्रेणी में फाल करके देवता में पहले स में ३० प्र० बाधे वह । एव उत्तर प्र० के बन्धस्थान और भूयस्कारादि यत्र,

	ज्ञान	दर्श	वेद	मोहनी	आयु	नाम	गोत्र	व्यत
उत्तर प्रकृति	५	६	२	२६	४	६	२	५
वधस्थान	१	३	१	१०	१	८	१	१
वधस्थान में कितनी प्रकृतिया	५	६	१	२२ २१ १७ १३	१	२३ २५ २६ २८ २९ ३० ३१-१	१	५
भूयस्कार	०	४	०	६	०	६	०	०
अल्पतर	०		०	८	०	८	०	०
अवस्थित	१		१	१०	१	३	१	१
अवक्तव्य	१		०	२	१		१	६

२ और कोइ जिन रहित नाम २६ बाधे यह तीजा अवक्तव्यवध है ॥२५॥

बीसयर कोडी कोडि नामे गोए नचरी मोहे ॥

तीसियर चउसु उदही निरय सुराउमि तित्तीसा ॥२६॥

मुत्तुं अकसाय ठिड् वार मुहुत्ता जहन्न वेअणिए ॥

अदुठ नाम गोएसु सेसएसु मुहुत्ततो ॥२७॥

विग्धा वरण असाए तीमं अट्टार सुहुम विगलतिगे ॥

पठमागिड् संघयणे दस दुसुवरि मेसु दुगवुड्डी ॥२८॥

उत्कृष्ट स्थिति बंध ॥ नाम और गोत्र कर्म की ३० स्थिति बीस कोडा कोडी सागरोपम की है ॥ मोहनीय कर्म को ७० कोडा-कोडी सागर और शेष चार कर्मों की स्थिति ३० कोडा कोडी सागरोपम की है । नारकी और देवता के आयुष्य की स्थिति ३३ सागरोपम की है ॥२६॥ जा० स्थिति बंध ॥ अकषायी को, छांडके (सकषायी) वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति चारह मुहूर्त की है ॥ नाम और गोत्र कर्म की जघन्य आठ आठ मुहूर्त की स्थिति है शेष पांच कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तर मुहूर्त की है ॥२७॥ उत्तर प्र० का ऊ० स्थिति बंध ॥ पांच अन्तराय ज्ञा० द० के चौदह आवरण और शाता वेदनीय २० स्थिति बंध तीस कोडा कोडी सागरोपमका है । सूक्ष्मत्रिक और विकलेन्द्रियत्रिक की स्थिति अठारह कोडा कोडी सागरोपम, पहला संघयण पहला संस्थान की स्थिति दश कोडा कोडी सागरोपम और उपर के संस्थान तथा संघयण दो दो में दो दो कोडा कोडी सागर की स्थिति बंध देना जैसे न्यग्रोध, रूपभना० १२ कोडा कोडी सादि नारच १४ कोडा कोडी कुब्ज, अर्ध नाराच १६ कोडा कोडी, वामन को-लिका १८ कोडा कोडी हुंडक और छेवट बीस कोडा कोडी सागरोपम ॥२८॥

१६ १ १ १ १ १ १ १

चालीस कसाएसू मिउ लहु निघ्युण्ह सुरहि सिय महुरे ॥
दस दोसड्ड समहिथा ते हालिद बिला डण ॥२६॥

दस सुहविहगड उरचे सुग दुग यिरछक पुरिस रड हासे ॥
मिच्छे सत्तरी मणुदुग इत्थी साएसु पन्नरस ॥३०॥

१ १ १ १ ० ० ० २
भय कुळ अरइ सोए मिउवि तिरि उरल निरय दुग निए ॥

५ ६ ४ १ १ १
तेअपण अथिर छके तस चउ थापर इग पणिदी ॥३१॥

नपू कुखगइ मास चउगुरु कखण्ड ररखमिय दुग्गधे ॥
वीम कोडा कोडी एवइ आगह वाम सया ॥३२॥

सोलह कषाय की ३० स्थित चालीस कोडा कोडी साग० मृदु-
लघु, स्निग्ध, उष्ण, सुरभिगध, श्वेत वर्ण, और मधुररस की दस
कोडा कोडी साग० धोर पीत वर्ण तथाअम्लरस की १०॥ कोडी
कोडी सागरोपम की ३० स्थिति है ॥२६॥ शुभ विहायो गति,
ऊंच गोत्र, सुरद्विग, स्थिरषट्क, पुरुष वेद, रति और हास्य का
दस काडा कोडी साग० मिथ्यात्व ७० कोडाकोडी साग० मनुष्य
द्विक, स्त्री वेद, और सातावे० की ३० स्थिति १५ कोडा काडी
सा० की है ॥३०॥ भय, जुगुप्सा, अरति, शोक, वैक्रियद्विक,
तिर्यचद्विक, धौदा, द्विक, नरकद्विक नीच गोत्र, तेजस पचक,
(ते० का० अगु० निर्मा० उप०) अस्थिरषट् (अस्थिर, अशुभ
दुर्भग, दुस्वर, अना० अयश) त्रस चतुष्क (त्रस बादर, पर्या
ता प्रत्येक) स्वावर एकेद्रिय और पचेद्रिय जाति ॥३१॥ ननु-
सक वेद, अशुभ विहायो गति, श्वास चतुष्क उश्वास, उद्योत,
आतप, पराघात) गुरु कर्कश, रुक्ष, शीत, दुर्गंध, की ३० स्थिति
वीस कोडा कोडी सागरोपम की है ॥ जितने कोडा कोडी सागरो
पम की स्थिति है, उतने सो वर्ष का अथाधा काल समझना ॥३२॥

गुरु कोडी को डीअंतो तित्था हाराण भिन्न मुहुवाहा ॥

लहु ठीइं संखगुणूणा नरतिरि आणाउ पल्लतिंग ॥ ३३ ॥

इगविगल पुव्व कोडी पलिआसंखंस आउ चउ अमणा

निरुवकमाण छमासा अवाह सेसाण भवतसो ॥ ६४ ॥

लहु ठिइ वंधो संजलण लोह पण विग्घ नाण दंसेसु ॥

भिन्न मुहुत्तं ते अट्ट जसुच्चे वारस य साए ॥ ३५ ॥

तीर्थकर नामकर्म की और आहारक द्विक की उ० स्थिति अतः कोडा-
कोडी अर्थात् एक कोडाकोडी से कुछ न्यून की होती है . और आवाधा
काल अन्तर मुहुत्त का है ॥ आठों कर्मोंकी जघन्य स्थिति असं ० गुण-
हीन अत कोडाकोडी सा० की है. मनुष्य और तिर्यच का आयुष्य उ०
तीन पल्योपम है ॥ ३३ ॥ आगामि भव का आयुष्य ॥ एकेन्द्रिय विकले-
न्द्रिय पूर्वकोटी वर्ष का आयुष्य बाधे । और असंज्ञि पंचेन्द्रिय पर्याप्त
चारों गति का आयुष्य पल्योपम के असख्य भाग बांधे । निरुपर्की आयु-
ष्यवाले को छे मास का अबाधाकाल होता है. शेष जीवों को भव का
तीसरा भाग आवाध काल होता है ॥ ३४ ॥ उत्तर प्र० का जघन्य स्थिति-
बंध ॥ संबल लोभ, ५ अनंत, ५ ज्ञाना०, ४ दर्शना की जघन्य स्थिति
अन्तर मु० की होती है. । यश नाम. ऊंच गोत्रकी मु० ज० स्थिति और
साता वेदनीय की १२ मु० की ज० स्थिति है (इनसब १५ प्र० का जघन्य
बंध नौवे गु० के अंत या दश में गु० होता है.) ॥ ३५ ॥

दो डग मासो परखो सजलण तिगे पुमड्ड वरिसाणे ॥

सेसाणु कोमाओ मिच्छत्तठिडए ज लद्ध ॥३६॥

अयमृक्कोसो गिदिसु पलिया सखस हीण लहुवधो ॥

कमसो पण वीसाए पन्नासय सहस्स सगुणियो ॥३७॥

संज्वलत्रिकका अनुक्रम से दो महिना, एक महिना, एक पक्ष का ज० स्थितिबंध है और पुरुषवेदका ज० आठ वर्ष यह जघ य स्थितिबंध नौमे गु० में अपनी ० वय प्र० के विच्छेद समये होता है ॥शेष ८५ प्र० की उत्कृष्ट स्थिति को मिथ्यात्व से भाग देने पर जो लव्य सरया आवे वह ज० स्थितिबंध समझना (इन ८५ प्र० का जघयबंध एकेन्द्रिय में होता है यथा-मिथ्यात्वका स्थितिबंध एक कोडा कोडी सागरोपम का है असाता और निद्रा ५ का स्थितिबंध सागरोपम का सातीया तीन भाग अर्थात् ३ बारहकपाय ३ मनुष्यद्विक स्त्रीवेद ५ इत्यादि उत्कृष्ट स्थिति परसे समझ लेना एव १०७ शेष १३ प्र० वैक्रिय अष्टक, जिन, आहारक २ मनुष्य तिर्यचायु का ज० स्थिति बंध अलग कहेंगे) ॥३६॥ पूर्वोक्त स्थितिबंध एकेन्द्रिय में उत्कृष्ट समझना ज० पल्यो पमके अस० भागहीन कहना (एव ८५ प्र० का ज० उ० स्थिति बंध एकेन्द्रिय में कहा शेष ज्ञा० ५, दर्शा० ४, अत० ५, की उ० स्थि० ३ सातावेदनी ३ यश, ऊचगोत्र ३ पुरुषवेद ३ संज्वलकपाय ३ और दो आयुष्य की पूर्व कोड की स्थिति बांधे यह उ० स्थिति ज० स्थिति पन्थोपम के अस० भागहीन परंतु दोना आयुष्य की ज० स्थिति सुल्लक भव प्रमाण समझना एव १०६ प्र० का बंध एकेन्द्रिय में है चिसका ज० उ० स्थितिबंध कहा) ॥३७॥

विगल^३ असन्निषु जिहो कणिट्ठो पल्ल संखभागूणो ॥
सुरनिरयाउ समा दस महस्स सेसाउ खुड्ढ भवं ॥३८॥

सन्वाण विलहु वंधे भिन्न मुहु अवाह आउजिहो वि ॥
केइ सुराउसमं जिणमंत मुहु विति आहारं ॥३९॥

सत्तरस समहिआ किर इगाणु पाणुं मि हुंति खुड्ढ भवा ॥
सगतीससय तिहुत्तर पाणु पुण इग मुहुतं मि ॥४०॥

पणसठि सहस पण सय छत्तिमा इगमहुत्त खुड्ढ भवा ॥
आवलिआण दोसय उप्पना एग खुड्ढ भवे ॥४१॥

विकलेन्द्रिय में और असंज्ञि पंचे० में अनुक्रम से. २५-५०
१००-१००० गुणस्थितिवंध एकेन्द्रिय से अधिक कहना (और उ०
से ज० पल्योपम के असं० भागहीन कहना. परतु असंज्ञि में ११७
प्र० का वंध है सो शेष प्र० का वंध एकेन्द्रियवत् भाग निकाल
लेना और आयुष्य की स्थितिवंध देवता और नारकी कि ज०
दश हजार वर्ष कहना. मनुष्य, तिर्यचकी ज० स्थि० जुलक भव
प्रमाण कहना) ॥३८॥ सठ्य प्र० का ज० स्थितिवंध का अबाधाकाल
अन्तर मुहुर्तका होता है. आयुष्य की उ० स्थितिवंधका भी अबाधा-
काल अन्तर मुहुर्तका होता है ॥ कितनेक आचार्यों का मत है
कि देवता के आयुष्य जितनी जिन नाम कर्म की जघन्यस्थिति
है. जिन नाम कर्म वाधने के पीछे देवता का एक पल्योपम अथवा
नारकी का दश हजार वर्ष का जघन्य भव करके तीर्थ कर होते हैं और
आहारकट्टिक की अन्तर मुहुर्तकी ज० स्थिति कहते हैं ॥३९॥
एक स्वासोस्वास मे साधिक सतरह जुलक भव होते हैं ॥ एक
अन्तरमुहुर्त में ३७७३६ स्वासोस्वास होते हैं ॥४०॥ एक अन्तर
मुहुर्त में ६५५३६ पेंसट हजार पांचसो छत्रीस जुलक भव होते हैं ॥
एक जुलक भव २५६ आबलीका होता है ॥४१॥ चत्कृष्ट तथा
जघन्य स्थितिवन्धस्वामी कहते हैं ॥

अविरय सम्मोतित्य आहार दुगाम्गाउ य पमत्ते ॥
 मिच्छ दिष्टी व धइ जिह ठिइ सेम पयडीण ॥
 विगल सुहु माउगतिग तार मणुआ सुर विउज्जि निरय दुग ॥
 एगिदि थावरा यन आईसाणा सुक्ककोस ॥ ४३ ॥
 तिरि उरल दुगुज्जोअ - छिवट्ट सुरनिरय सेस चउगइआ ॥
 आहार जिणमपुवो ऽनिअहि सजल पुरिसलहुँ ॥ ४४ ॥
 सायजमुच्चा वरणाविग्घ सुहुमो विउज्जि छ असन्नि ॥
 सन्नि विआउ वायर पज्जेगिदिउ सेसाण ॥ ४५ ॥

जिन नाम कर्मका ३० स्थितिषु ध अविरति सम्य और आहारकद्विक
 और देवआयु का प्रमत्त सयत है शेष ११६ प्र० का ३० स्थितिषु ध मिष्ट
 यात्वी को होता है (यह उत्कृष्ट स्थितिषु ध अति सक्लिष्ट परिणामों से
 होता है पर तु देवायु मनुष्यायु र्यतिचायु अति विशुद्ध परिणामों से
 वधता है) ॥ ४२ ॥ विकलेन्द्रिय ३, सूक्ष्म ३, आयुष्य ३ (देवायु वर्ज
 के) मुरदिक, वैक्रिय २ और नरकद्विक एव १५ प्र० का ३० स्थितिषु ध
 मिग्यात्वी तिर्यच और मनुष्य को होता है इसानपर्यंत के देवता और
 एकेन्द्रिय स्यावर आतर्प नामकर्म का ३० स्थितिषु ध बाधते हैं ॥ ४३ ॥
 तिर्यच २, औशरिक २, उद्योत और छेषट्ट सघयण को देवता और
 नारको ३० स्थिति से बाधते हैं ॥ शेष २६ प्र० चारों गति वाले मिग्यात्वी
 ३० स्थिति से बाधते हैं ॥ अपूर्व करण गु० में क्षपके श्रेणीवाला जीव
 आहारक द्विक और जिन नाम की ज० स्थिति बाधे । अनिबृति वादर
 सपराय वाला जीव सव्वल कपाय और पुरुष वेदका ज० स्थितिषु ध
 कहे ॥ ४४ ॥ सूक्ष्म सपराय गु० वर्ती जीव सातायेदनीय, यरा नाम
 ऊच गोत्र, नन आयरण और पाच अतराय को ज० स्थिति से बाधे ॥
 पर्याता असक्षि पचेन्द्रिय तिर्यच वैक्रिय षट्का ज० स्थितिषु ध करे ॥
 मक्षि और घसक्षि पचेन्द्रिय चारों प्रकार के आयुष्य को ज० स्थितिषु ध बाधे
 ॥ शेष ८४ प्रकृति का ज० स्थितिषु ध बाधर पर्याता एकेन्द्रिय जीव
 बाधते हैं ॥ ४५ ॥

उक्कोस जहन्नेअर भंगा साइ अणाइ ध्रुव अध्रुवा ॥

चउहासगअजहन्नो सेसतिगेआउचउसुदुहा ॥ ४६ ॥

चउभेओअजहन्नो संजलणा वरण नवग विग्घाणं ॥

सेसतिगिसाइ अध्रुवो तह चउहासेस पयडीणं ॥ ४७ ॥

उत्कृष्ट, जघन्यबंध अनुकृष्टबंध और अजघन्य बंध एवं ४ भांगे अथवा सादिवंध, अनादिवंध ध्रुवबंध और अध्रुव बंध यह भी चार भांगे हैं ॥ सात मूल प्र० विषय ज० बंध ४ प्रकार का है. बाकी के तीन बंध में. सादि और अध्रुव यह दो प्रकार के बंध हैं ॥ आयुष्य के उत्कृष्टादि ४ भांगों में सादि और अध्रुव यह दो भांगे होते हैं ॥ ४६ ॥ संज्वलन कषायनव आवरण और पांच अन्तराय संबंधी अजघन्यबंध चार भेद से हैं. और इन्हीं प्रकृतियोंके शेष तीनबंध विषय सादि और अध्रुव बंध दो भांगे हैं ॥ बाकी १०२ प्रकृति के जघन्यादि चार भांगों में सादि और अध्रुव दो भांगे हैं ॥

- विवेचन—संज्वल कषाय ४, ज्ञाना ० दर्श ० आवरण ६ और ५ अन्तराय एवं १८ प्र० का अजघन्य बंध चार प्रकार है। यथा— उपशम श्रेणी वालों को पूर्वोक्त १८ प्र० का अजघन्यबंध होता है. वह उपशांत मोहावस्था में अवन्ध होके. गिरता हुआ अजघन्य बाधे उसे सादि कहते हैं ॥ १ उपशांतमोह अवस्था के पहिले वे प्रकृतियां कभी विच्छेद नहीं हुई इसलिये अनादि २ ॥ अभव्य इन प्रकृतियों का अन्त नहीं करता इसलिये ध्रुव ३ और भव्य करेगा इसलिये अध्रुव है ४, पूर्वोक्त १८ प्र० का शेष जघन्य १ उत्कृष्ट २ अनुत्कृष्ट एवं तीन बंध विषय सादि, अध्रुव दो भांगे हैं ॥ वेत्तपक श्रेणी में अपने अपने बंधविच्छेद समय पहिले जघन्यबंध होता है. वह प्रथम ही हुआ है। इसलिये सादि आगे अवन्धक होगा इसलिये अध्रुव, उत्कृष्ट बंध सज्जि पंचेन्द्रिय मिथ्यात्वी करता है। वह अन्धर मुहुत रह कर पोछे फिर अनुत्कृष्ट बन्ध करता। अपना है इस तरह चढते उतरते की अपेक्षा से इन दो भांगों को सादि अध्रुव-होता है ॥ एवं शेष १०२ प्र० के भांगों को स्व बुद्धि से विवचा लेना ॥ ४७ ॥

साणाड अपूर्वते अयरतो कोडि कोडियो नहिगो ॥
 गधोनहु हीणो नय मिच्छे भव्विअरसन्निमि ॥४८॥

जइलहुनधो वायर पज्ज अससगुण सुहुमपज्जहिगो ॥

एसिअपज्जाणलहु सुहुमअर अपज्ज पज्जगुरु ॥४९॥

लहु विअ पज्ज अरज्जे अपज्जे अर विअ गुरुहिगो एवं ॥ १० ११ १२ १३

ति चउ असन्निसु नर सख गुणो विअ अमण पज्जे ॥५०॥

सास्वादन से यावत् अपूर्व करण गु० पर्यंत अत कोडा कोडी सांगरोपम मे अविध वध नहीं होता (३० ७० आदि काडा कोडी मागर का वध केवल मिथ्यात्व गु० में होता है) और न अत कोडा कोडी सा० से कम होता है। तथा मिथ्यादष्टि भव्य और अभव्यमज्ञि पचेद्रिय में भी इससे हीनवध नहीं होता ॥४८॥ सपसेस्तोक यतिका जघय स्थितिवध, १ वादर पर्याप्ता एकेद्रियका ज० स्थितिवध अस० गुण, २ सूक्ष्म एकेद्रिय पर्याप्ता का ज० स्थि० विशेषाधिक, ३ वादर सूक्ष्म एकेद्रिय के अपर्याप्ता का जघय स्थितिवध विशेषाधिक, ५ सूक्ष्म अपर्याप्ता एकेद्रिय का ३० स्थि० विश० ६ वादर अपर्या० एक० ३० स्थि० विश० ७ सूक्ष्म पर्या० एके० ३० स्थि० विश० ८ वादर पर्या० एके० ३० स्थि० विश० ९ वेरिद्रिय पर्या० ज० स्थि० व० स० गु० १०, वेरिद्रिय अपर्या०, ज० व० विश० ११ वेरिद्रिय अपर्या० ३० व० विश० १२ वेरिद्रिय पर्याप्ता ३० न विश० १३ तेरिद्रिय पर्या० ज० व० विश० १४ तेरि० अपर्या० ज० व० विश० १५ तेरि० अपर्या० ३० व० विश० १६ तेरि० पर्या० ३० व० विश० १७ चौरिद्रिय पर्या० ज० व० विश० १८ चौरि० अपर्या० ज० व० विश० १९ चौरि० अपर्या० ३० व० विश० २० चौरि पर्या० ३ व० विश० २१ अससि पचेद्रिय पर्या० ज० व० स० गु २२ अस पचे अपर्या० ज० व० विश०

तो जइ जिहो वंधो संख गुणो देस विरयहस्तिअरो ॥

सम्मचउ सन्नि चउरो ठिइ व्घाणुक्रम संख गुणा ॥५१॥

सव्वाणवि जिहू ठिइ अमुभाजं साइ संकिलेसेणं ॥

इअरा विसोहिओ पुग सुतुं नर अमर तिरि आउ ॥५२॥

सुहुम निगोआइ खणप्प जोग वायरय विंगल अमण मणा ॥

अपज्ज लहु पढम दुगुरु पजहस्ति अगे असंण गुणो ॥५३॥

२३ अस० पंचे० अपर्या० उ० व० विशे० २४ अस० पंचे० पर्या०
 उ० व० विशे० २५ छट्ठे गुणस्थानक' वर्ती साधुका उत्कृष्ट बंध
 स० गुणो २६ देश विरतिका ज० वं० सं० गु० २७ देश विरतिका
 उ० व० सं० गु० २८ चोये गुण स्थानक पर्याप्ताका ज० व० सं०
 गु० २९ अविरति अपर्या० ज० बंध स० गु० ३० अविरति अपर्या०
 उ० व० सं० गु० ३१ अविरति पर्या० उ० वं० सं० गु० ३२ संजि
 पंचे० पर्या० ज० वं० सं० गु० ३३ सन्नि पंचे० अपर्या० ज० वं० सं०
 गु० ३४ संजि पंचे० अपर्या० उ० वं० सं० गु० ३५ संजि पंचे०
 पर्या० उ० वं० सं० गु० ३६ ॥५६-५१॥ मनुष्य, देव, तिर्यचायु
 वर्ज के शेष सब प्रकृतियों कि उत्कृष्ट स्थिति अशुभ (अप्रशस्त)
 जानती क्यों कि तीव्र कषायोदय से उत्कृष्ट बंध होता है, और
 जघन्य स्थिति बन्ध विशुद्धाध्यवसायो से होता है, ॥५२॥
 सूत्रमनिगोद लब्धी अपर्याप्त का सबसे स्तोक योग १ इससे
 बादर निगोद अपर्या० ज० योग अस० गु० २ वेरिन्द्रिय
 अप० ज० योग अस० गु० ३ तेरि० अप० ज० योग
 अस० गु० ४ चौरि० अप० ज० योग अस० गु ५ अ-

अपजत्त तसुक्कौसो पञ्जहन्नि अरु एव ठिइ टाणा ॥

अपजेअर भख गुणा परम अपज चिए असख गुणा ॥५४॥

सङ्घि पचेन्द्रिय अप० ज० योग अस गु० ६ सङ्घि पचे० पर्या०
ज० योग अस० गु० ७ सूद्धमनिगोद अप० उ० योग अस गु० ८
बादर निगोद अप० उ० याग अस० गु० ९ सूद्धमनिगोद पर्या०
उ० योग अस० गु० १० बादर निगोद पर्या० ज० याग अस० गु०
११ सूद्धमनिगोद पर्या० उ० योग अस गु १२ बादरनिगोद पर्या
उ योग अस गु १३ वेरी अप उ योग अस० गु १४ तेरि
अप उ योग अस गु १५ चौरी अप० उ० योग अस० १६
असङ्घि पचे० अप० उ० योग अस० गु० १७ सङ्घि पचे० अपर्या
उ० योग अस गु० १८ वेरी० पर्या० ज० योग अस० गु १९ तेरि०
पर्या० ज० योग अस० गु० २० चौरि० पर्या० ज० योग अस० गु० २१
असङ्घि पचे० पर्या० ज० योग अस० गु० २२
सङ्घि पचे० पर्या० ज० योग अस० गु० २३
वेरि० पर्या० उ० योग अस गु २४ तेरि पर्या उ योग अस
गु २५ चौरि पर्या उ योग अस गु २६ असङ्घि पचे पर्या
उ० योग अस० गु० २७ सङ्घि पचे० पर्या० उ० योग अस० गु० २८ अनुत्तर
देवका उ० योग अस ० गु ० २९ प्रोथैक देव उ० योग अस गु ० ३०
गुगलीया उ० योग अस० गु० ३१ आहारक शरीर उ० योग अस० गु०
३२ शेष देव नारकी तिर्यैच मनुयाणा यथो त्तरमुत्कृष्ट योग अस० गु०
॥३३॥ इसी तरह स्थिति स्थान भी कहना । परंतु अपर्याप्ता से पर्याप्ता
सम्पात गु० कहना परंतु इतना विशेष है कि अपर्याप्ता वेरि उ० में अस
र्यात गुणा कहना ॥ ५४ ॥

पङ्खणं असंख गुण विरिञ्च अपज पङ् ठिइ असंख लोग समा ॥

अञ्कत्रसाया अहिआ, सत्तसु आउसु असंख गुणा ॥५५॥

तिरि^३ निरयति^३ जोआण^{१०} नर भव जुअ सचउ पल्ल तेसइ^{१६३} ॥

थावर चउ इग विगला यवेसु पण सीइ सयमयरा ॥५६॥

अपढम सघयणा गिइ खगइ अण मिच्छ दुमग थीण तिगं ॥

निय^१नपु^१इत्थि^३ दुतीसं^३ पणिंदिसु अवन्ध ठिइ परमा ॥५७॥

अपर्याप्ता जीवों को प्रति समय असं० गुण योग वृद्धि होती है. और प्रत्येक स्थितिबन्ध के असख्यांते लोकाकाश प्रदेश प्रमाण अध्यवसाय होते हैं। सात कर्मों की स्थिति बन्ध के अध्यवसाय. विशेषाधिक होते हैं। यदा प्रथम ज. स्थिति ६ अध्यवसाय अस. लाकाकाश. अस प्रदेश प्रमाण है. तत् दूसरे समय की स्थिति सथानके अध्यवसाय विशेषाधिक ह एवंयावत उत्कृष्टस्थिति बंध पर्यन्त विशेषाधिक कहना परन्तु आयुष्य कर्मके अस. गु. कहना. ॥५५॥ तिर्यच त्रिक नरक त्रिक और उद्योत नाम कर्मका उत्कृष्ट अबाधा काल. मनुष्यके भवों सहित चार पल्योपम साधिक एकसौ त्रसट १६३ सागरोपम हैं। अर्थात् इतने काल तक पूर्वोक्त ७ प्र. न बांधे ॥ स्यावर चतुष्क, एकेन्द्रिय जाति, विकलेन्द्रिय और आतप नाम कर्मका, उ. अबाधा काल मनुष्य भवयुक्त चार पल्योपम साधिक १८५ सागरोपमका है ॥५६॥ प्रथम का वर्जके शेष ५ संघयणा, ५ स स्थान, विहायो-गति, अनन्तानुधन्धी कषाय, मिथ्यात्व मोहनीय, दुर्भाग्य त्रिक, थीणद्वि त्रिक, नीच गोत्र, नपु सक वेद, और स्त्रि वेद एव २५ प्रं का उ. अवन्ध काल नरभवयुक्त एकसौ बतीस १३२ सागरोपम है। यह ४१ प्र. की अवन्धस्थिति प चेन्द्रिय विषय होती है. शेष ७१ प्र. का अवन्ध काल दूसरे ग्रन्थसे लिखते हैं। दूसरा तीशरा कषाय ८ मनुष्य त्रिक ११ औदारिक द्विक १३ और वज रुषभनाराच स. घयणा एव १४ प्र देशोन पूव कोटी तक स यत नहीं बांधते और शेष ५ प्र. का उ. अवन्ध काल अन्तर मुहुर्त है ॥५७॥

^{१३२} विजयाद्दसु ^{१६३} गेपिज्जे ^{१८५} तमाद् दहिमय दुतीस तेसद्द ॥
 पण सीद् सयय नये पल्ल तिग सुर^२ विउव्वि दुगे ॥
 समयादसंखकाल तिरिदुग निएसु अउ अन्त मुद्द ॥
 उरलि असल्ल परट्टा साय ठिइ पुव्व कोट्टणा ॥५९॥
 जलहिसय पणसीअ परघुस्सा से पण्णिदि तस चउगे ॥
^{१३२} वत्तिस सुहनिहगद् पुम सुभगति गुच चउर मे ॥६०॥
 असुखगद् जाइ आगिइ सधयणाहार निरयलोअ दुग ॥
 १ १ १ १० १ १ ४ १
 थिर सुभ जसथावर दस नपु उत्थी दुजुअल मसाय ॥६१॥

अथ च काल सख्या उपाय ॥ विजयादि अथात् विचय २ वार और
 अच्युत ३ वार एव १३२ सागर पूर्ण हाता है ॥ प्रवेयक १ विजयादि २
 अच्युत ३ वार एव १६३ तम प्रभा १ प्रवेयक १ विजयादि २ और
 अच्युत तीन वार एव १८५ सागरापस मनुष्य भय युक्त होता है एव
 २५-७-६ प का अनुक्रम से अथ-घ काल कहा ॥ अथ ७३ अधुप्रवधा
 प्र का निरन्तर व घ कहते है ॥ सुरद्विक वैकियद्विक् का तीन पर्यापस
 तक उ निरन्तर व घ युगलिया बाधे ॥ ५८ ॥ जघन्य एक समय से यावत्
 उ अथ-काल तक निरन्तर व-घ निय-चद्विक और नीचगोत्र का (तउ
 वाठ, नारकी में होता है ॥ आध्युय ४ का निरन्तर वघ अतर मुहूर्त्त ॥
 औदारिक शरीरका असह्य पुद्गल परामर्त् और सातावेदनीका निरन्तर
 देशोण पूर्वकोटी तक होता है ॥ ५८ ॥ परामाने, उश्वास, पचद्रिय
 जाति और अस घतुष्क विषय १५८ सागरोपमका निरन्तर व घ होता है
 शुभ विहायोगति, पुरुष वेद, सौभाग्यत्रिक, उचगोत्र और समचतुस्त्र
 सस्थान विषय १३२ सागरोपम का निरन्तर स्थिति व घ होता है ॥६०॥
 अशुभ विहायोगति, अशुभ जाति, अशुभ सस्थान ५, अशुभ सधयण ५
 आहारक द्विक, नरकद्विक, उद्योत द्विक, स्थिर, शुभ, यश, स्थावर दशक
 नपुमक वेद, स्त्रीवेद, द्योगल और साठना वेदनीय एव ४१ ॥ ६१ ॥

समयादंतमुहुतं मणुदुग जिण वइर उरलुवंगेसु ॥

तित्तिसयरा परमा अंतमुहु लहुवि आउ जिणे ॥६२॥

तिव्वो असुह सुहाण संकेस विसोहिओ विवज्जयओ ॥

संदरसो गिरि महिरथ जल रेहा सरिस कसा एहिं ॥६३॥

चउठाणाइ असुहा सुहन्नहा विग्घदेसघाई आवरणा ॥

पुम संजलणिग दुति चउ ठाणरसा सेस दुगमाइ ॥६४॥

इन ४१ प्र. का निरन्तर एक समय से यावत् अंतर मुहुते पर्यंत उ. बंध होता है ॥ मनुष्य द्विक, जिननाम, वज्ररुषभनाराच संवयण, और औदारिक अंगोपांगका ३३ सागरोपम का निरन्तर उ. बंध होता है ॥ और चार आयुष्य तथा जिननाम कर्मका जघन्य निरन्तर बंध अन्तर मुहुर्त होता है ॥ ६२ ॥ अनुभाग बंधः- अशुभ और शुभ प्रकृतियों का तीव्ररस अनुक्रम सं संक्लिष्ट और विशुद्ध परिणामों से बंधता है । इसमें विपरितपने मद् रस बंधता है यह पर्वत, पृथ्वी, रेती और पानी की रेखा के समान कणयों से होता है ॥ ६३ ॥ उक्त कषायों से अशुभ प्र. का रस अनुक्रम से ४-३-२-१ स्थानिक बन्धता है और शुभ प्र. का इससे विपरितपने समझ लेना ॥ शुभ प्र. का एक स्थानिक रस नहीं होता इसलिये कौनसी प्रकृति कितने प्रकार के रस बांधे वह बतलाते हैं । पांच अन्तराय देशघाति आवरण ७ (४ ज्ञा० ३ दर्शा०) पुरुष वेद, और सब्बल कषाय ४ एवं १७ प्रकृति १ - २ - ३ - ४ स्थानिक रस से बन्धती है. (इनका एक स्थानिक रस अनिवृत्ति बादर गु० के सख्याते भाग व्यतीत होने पर होता है) शेष १०३ प्रकृति का २-३-४ स्थानिक रस होता है । एक स्थानिक रस नहीं बन्धता क्योंकि एक स्थानिक रस अनिवृत्ति बादर गु० में होता है. और वहा इन सब प्रकृतियों का बंध विच्छेद हो जाता है केवल ज्ञानावर्णादि ५ प्र० का बन्ध विच्छेद यहां नहीं होता वे प्र० एक स्थानिक रस बंध की नहीं है ॥ ६४ ॥

निनुच्छुरसो सहजो दुति चउभाग कटि इक्क भागतो ॥

इग ठाणाइ असुहो असुहाण सुहो सुहाणतु ॥६५॥

तिव्वमिग थायरायव सुरमिच्छा विगल सुहुम निरयतिग ॥

तिरि मणुआउ तिरि नरा तिरिदुग छेवठ सुरनिरया ॥६६॥

विउवि सुरा हारग दुग सुयगइ वन्न चउ तेअ जिण सायं ॥

समचउ परघा तसदस पणिदि सासु च सुवगाउ ॥६७॥

नीव और शाठे के स्वाभाविक रस को दो, तीन चार भाग को उकाल के अर्थात् काढा बना के एक भाग रखे वह अशुभ प्रकृत्तिका एक स्थानिक घनेरेह अशुभ रस है, और वैसे ही शुभ प्र० का शुभ रस समझना । (एक स्थानिक रस क स्पद्ध क असख्याते होते है और वे स्पद्ध क उत्तरान्तर अनन्त गुण रसवाले होते है एव दो, तीन, चार स्थानिक रस स्पद्ध क भी असख्याते है और परस्पर अनन्त गुण रस वृद्धीवाले हैं । जितने अध्यवसाय स्थान है । उतने ही अनुभाग स्थान है क्योंकि अनुभाग अर्थात् रसका कारण कषायिक परिणाम है और कषायिक परिणाम अध्यवसाय के तीव्र तीव्रतर, तीव्रतम, मद्द मद्दतर, मद्दतम आदि रूप से असख्याते भेद है देखिये कम्मपयही की ३१ वीं गाथा श्री यशोविजयजाकृत टीका-कषायिक परिणामज य अनुभाग स्थान भी कषायिक परिणाम के तुन्य अर्थात् असख्याते ही है) ॥६५॥ एके द्रय स्वावर, आतप कर्म का ४० रसवध मिध्यात्वी तिर्यच और मनुष्य करते है ॥ तिर्यचद्विक, छेवठ सघयण का ४० रसवध देवता नारकी करते है ॥६६॥ वेकियद्विक, सुरद्विक आहारकद्विक, शुभ विहायोगति, वर्ण चतुष्क तेजस चतुष्क, जिननाम, सातावेदनी ममचतुरस्र सस्थान, पराघात तसदशक पचेन्द्रिय जाति, उश्वास और उच्चगोत्र एवं ३२ प्र० का ४० रम सूदम सपराय और पूर्व करण गु० वृत्ति क्षपक श्रेणीवाला पाये ॥६७॥

तम^१तमगा उज्जो^२अं स^२म्मसुरा मणु^१अ उरल दुग वडरं ॥

अप्रमत्तो अमराउ चउगइ मिच्छाउ सेसाणं ॥६८॥

थीण^३ तिगं अण^४ मिच्छं^१ मंदरसं संजमुम्पुहो मिच्छो ॥

विअ^४ तिअ कसाय अवि^४रय देस पमत्तो अरइ सोए ॥६९॥

अपमाइ हारग दुगं दुनिइ असुवन्न हास रइ कुच्छा ॥

भय सुवघाय मपुव्वो अनिअही पुरिस संजलणे ७०॥

विग्घा वरणे सुहुमो मणु तिरिआ सुहुम विगल तिग आऊ ॥

वेउव्विच्छकम रमा निरया उज्जोअ उरल दुगं ॥७१॥

तम तम प्रभा नारकी के जीव उद्योत नाम कर्म का उ० रस बांधते है । सम्यक्त्व दृष्टि देवता. मनुष्यद्विक, औदारिक द्विक और वज्र रुषभनाराच संघयण का उ० रस बांधे. । अप्रमत्तसाधु देवायु' का उ० रस बांधे और शेष ६८ प्र० का उ० रस चारोंगतिके उत्कृष्ट कषाय वाले मिथ्यादृष्टि जीव बांधते है ॥६८॥ सम्यक्त्व चारित्र के सन्मुख हुवा मिथ्यादृष्टि जीव थीणद्वित्रिक, अनन्तानुबधी कषाय. और मिथ्यात्व मोहनी का जघन्य रस बांधे । देशविरति चारित्र सन्मुख सम्य-गदृष्टि जीव अप्रत्यख्यानी कषाय को और सर्व विरति चारित्र सन्मुख देशविरतिजीव. तीजे कषाय को ज० रससे बांधे । प्रमतसाधु, अरति और शोक को ज० रससे बांधते है ॥६९॥ अप्रमत्तसाधु, आहारक द्विकको और अपूर्व करण गु० वर्तिक्षपक श्रेणीवाले निद्राद्विक. अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, हास्य, रति, जुगुप्सा, भय और उपघात नाम कर्मको ज० रस बांधते है ॥ अनिवृत्ति गु० वाले क्षपक पुरुषवेद और संज्वल कषाय का ज० रस बांधे ॥७०॥ पांच अन्तराय, और ज्ञान. दर्शनके नौ आवरण का ज० रस सूक्ष्म मंपराय गु० वाले बांधे । सूक्ष्मत्रिक विकलेन्द्रित्रिक, चार आयुष्य और वैक्रिय षट्क एवं १६ प्र० का ज० रस मनुष्य और तिर्यच बांधते है. । देवता नारकी उद्योत और औदारिक द्विकको ज० रससे बांधे ॥७१॥

तिरि^२ दुगनि^१श्च तमतमा^१ विणम^१रिग्य निरय^१ विणिग^१ थावरय ॥

आसुहुमायव^१ समो^१ च साय^१ थिर^१ सुभ^१ जसा^१ सिअरा ॥७२॥

तम^४ वन्न^४ तेअ^४ चउमणु^२ खगइ^२ दुग^१ पणिदि^१ सास^१ पर^१ घुच्च ॥

सघयणा^६ गिड^६ नपुत्थी^{१,५} सुभ^३मि^६ अरति^६ मिच्छ^६ चउ^६ गइया ॥७३॥

चउतेअ^४ वन्न^४ वेअणिअ^१ नामणुक्कास^१ सेस^१ धुववधी ॥

घाइण^{१४} अजहन्नो^१ गोए^१ दुविहो^१ इमो^१ चउहा ॥७४॥

तियचद्विय और नीच गोत्र के ज० रस को तम तम प्रभावनारकी
 धाये जिन् नामका ज० रस अविरति सम्यक्त्वदष्टि मनुष्य धाये । नरक
 बिना शेष तीन गति क जीव एकेद्रिय जाति और स्यावर नामकर्मका
 ज० रस धाये । सौधर्म ईशान पर्यंत देवता आतप नामकर्मका ज० रस
 धाये । सम्यक्त्वदष्टि अथवा मिथ्यादष्टि जीव, साता, स्यावर शुभ और
 यश इनकी प्रतिपत्ति ४ एव ८ प्र० का ज० रस धाये ॥७२॥ प्रस ४, वर्य
 ४, तेजस ४ (ति० का० अगु० नि०) मनुष्यद्विक, रगतिद्विक, पचेद्रिय,
 वस्वास, पराघात, ऊष गोत्र सघयण ६, सत्यान ६ नपु सकवेद, स्त्रीवेद,
 सौभाग्यत्रिक और दुःभाग्यत्रिक एव ४० प्र० का ज० रस चारोगतिघाते
 मिथ्यादष्टि जीव धाधते है ॥७३॥ तेजस ४, शुभवर्ण ४, वेदनीय और
 नामकर्मका अनुरक्त रसबंध शेष ४३ ध्रुववधी प्रकृति तथा १४ घाति
 प्र० का अजवय रस और गोत्र कर्मका अनुरक्त और अजवन्य दोनों
 रस ए व चार प्रकार से है (सादि अनादि, ध्रुव, अध्रुव) ॥७४॥

सेसमि दुहा (अणु भागबन्धो सम्मत्तो) (वर्गणा स्वरूपमाहः) ।
इग दुगणु गाइ जा अभवणंत गुणियाणु ॥

खंधा उरलोचि अवग्गणा उ तह अगहणं तरिया ॥७५॥

ए मेव विउव्वाहार तेअ भाषाणु पाण मणकम्मे ॥
सुहुमा कमावगाहो ऊणुणंगुल असंखंसो ॥७६॥

इक्किहिया सिद्धाणंतंसा अंतरेसु अगहणा ॥
सव्वथ जहन्नु चिआ निअणंतं साहिया जिहा ॥७७॥

शेष प्रकृति और तीन प्रकार के रसबन्ध के विषय दो भांगे हैं (सादि अधुव) “वर्गणा स्वरूप.” एक अणुक, दो अणुक एवं यावत् अभव्य से अनन्तगुणे परमाणु निष्पन्न स्कध वह औदारिक ग्रहण योग्य वर्गणा होती है । एवं एकेक परमाणुकी वृद्धि से ग्रहण योग्य वर्गणा के पश्चात् अग्रहण योग्य वर्गणा होती है ॥७५॥ इस तरह यावत् अनन्त वृद्धि होने पर नैक्रिय ग्रहण योग्य वर्गणा. एणं आहारक, तेजस, भाषा श्वासोश्वास, मन और कारमण वर्गणा की भी परस्पर एकेक से अनन्त गुणी वृद्धि समझ लेना और यह औदारिकादि न वर्गणा अनुक्रम से सूक्ष्म सूक्ष्म होती है. अवगहना हीन हीन अणुल के असख्यभाग होती है ॥७६॥ एकेक परमाणु अधिक यावत् सिद्धों के अनन्त में भाग औदारिकादि वर्गणा विषय अग्रहण वर्गणा होती है. सर्व वर्गणा विषय जघन्य ग्रहण योग्य वर्गणा से अतन अनन्तवें भाग अधिक उत्कृष्ट वर्गणा होनी है ॥७७॥

अतिम चउफास दुग्ध पच वन्नरम कम्म सधदल ॥
 सव्वजिअणत गुणरस थणुजुत मणतय पएस ॥७८॥
 एग पएमो गाढ निअसव्व पएमथो गहेड जिओ ॥
 थोवो आउ तदसो नामे गोए समो अहियो ॥७९॥

अन्त के चार स्पर्श, दो गंध, पाच वण, पाच रसवाले कर्मस्त्रध जो सर्व जीवों में भी अनन्त गुणों रसवाले अणुओं से युक्त है। अनन्त प्रवेशों एक प्रदेश क्षेत्र को अवगाह कर रहने वाले कर्मस्त्रध को अपने सर्व प्रदेशों से जीव ग्रहण करता है वह (ग्रहण किया हुआ अनन्त स्त्रधमय कर्मदल) का सबसे स्तोक भाग आयुष्य कर्मपन परिणमता है नाम और गात्र कर्म के विषय तुल्य परंतु आयुष्य कर्म से अधिक भाव परिणमता है विवेचन—जीव कैसा कम दलिक ग्रहण करते है, वह कहते हैं आठ स्पर्शों में से अन्त के ४ स्पर्श (शीत उष्ण, स्निग्ध, रुच) होते है एक परमाणु में पूर्वोक्त ४ स्पर्श में दो स्पर्श प्रतिपक्षी होते है यादा परमाणु इकठे होने से चारों स्पर्श मिलत है और ये वण ५, गंध २, रस ५, युक्त होते हैं परमाणु में वण गंध रस एकैक ही होता है) ऐसे कर्मस्त्रध के दलीये जो प्रत्येक परमाणु प्रति सध जीव न अन्त त गुणों रस प अधिभाग परिच्छेद है ॥ ऐसे परमाणुवों से युक्त और अन्त प्रदेशों अर्थात् अभव्य से अनन्त गुणों परमाणु मयुक्त एक प्रदेशा वगाढ जिअ आकारा प्रदेशों को अवगाहनामें जीव गटा हो उमी आकारा प्रदेशों को अवगाहा हुआ परंतु अन्तर परस्पर प्रदेश वगाढ नहीं। ऐसे कर्मस्त्रध दलिक को जीव अपने सर्व प्रदेशों से ग्रहण करता है वह अभ्यवमाय से ग्रहण किये कर्मदल जो अष्टविध वरुह दो तो आठ भाग सात विधि प्रथक हो तो सात भाग और छवियार प्रथक हा तो छे भाग हात है ॥७८-७९॥

विग्वावरणे मोहे सव्वो वरि वेअणीइ जेणपे ॥
 तत्सा फुडतं नहवइ ठिइ विसेसेण सेसाणं ॥८०॥
 निभजाइलद्धदलिआणं तं सो होइ सव्व घाइणं ॥
 वज्झंतीण विभज्जइ सेभं सेसाण पइ समयं ॥८१॥
 सम्म देस सव्व विरइउ अणविसंजोअ दं स खवगेअं ॥
 मोह सम संत खवगे खीण सजोगि अरगुणसेठी ॥८२॥
 गुणसेठी दलग्गणाणु समयमुदयाद संखगुणणाए ॥
 एअगुणापुण कमसो असंख गुण निज्जरा जिवा ॥८३॥

अन्तराय, ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म विषय परस्पर तुल्य और गोत्रकर्म से अधिक इससे मोहनीयकर्म विषय अधिक और वेदनीयकर्म विषय सबसे अधिक भाग परिणामते हैं। स्तोक दलिक होने से वेदनीयकर्म का स्पष्ट अनुभव नहीं होता और बाकी कर्मों की स्थिति विशेष करके हीनाधिक भाग होती हैं ॥८०॥ अपनी मूल प्रकृति रूप जाति से प्राप्त किये हुए कर्म दलिक का अनन्तवां भाग सर्वथाति प्रकृति के भाग में आता है और बाकी रहे हुवे प्रदेश शेष बन्धती हुई प्रकृतियों को प्रति समय बटजाता है ॥८१॥ गुणश्रेणी सम्यक्त्व प्राप्ति यह प्रथम गुणश्रेणी १; देशविरति २, सर्व विरति ३, अनन्तानुबंधी की विसयोजना ४, दर्शन मोहनीय क्षये ५ चारित्र मोहनीय उपशमं अर्थात् उपशमश्रेणि विषय ६-१० गुणस्थानक में ६, उपशांत गुणस्थानक में ७ क्षपकश्रेणी ६-१० गु० में ८, क्षीणमोह गु० में ६, सयोगी केवली १०, आयोगी केवली ११, यह ग्यारह गुण श्रेणी अर्थात् गुणाकारे प्रदेश रचना होती है ॥८२॥ उस गुणश्रेणी विषय कर्म दल की रचना प्रति समय उदय क्षण की अपेक्षा से असख्यात २ गुणी होती है आर पूर्वोक्त गुणश्रेणी वाले जीव अनुक्रम से असख्यात २ गुणी निर्जरावाले होते हैं ॥८३॥

पलिआऽसरमुहं सासर्णं इअरं गुणअतर हस्त ॥

गुरु मिच्छिवे छमठी इअर गुणे पुग्गलद्ध तो ॥८४॥

उद्वार अद्धं रिक्त पलिअ तिहा समय वासमय समए ॥

केसमहारो दीवोदहि आउ तसाऽ परिमाणे ॥८५॥

दब्बेखिते काले भावे चउह दुह वायगे सुहुमो ॥

होऽ अणतुस्मप्पिणीपागेमाणो पुग्गल परट्ठो ॥८६॥

उरलाऽ सत्तगेण एगनिओ मुअड कुमिअ सव्वअणु ॥

जत्तिअ कालिस धूलो दब्बे सुहुमो सगन्नयरा ॥८७॥

गु० विषय ज० उ० अन्तर ॥ सास्त्रादन और अय दूसर गुण-
स्थान का जघ य अतर पत्योपम क अस० भाग है और अय गु०
काज० अन्तर अ तरमुहर्त का है । मिथ्यात्त्र गुण स्थानक का उ०
अ तर दोछासठ (१३२) सागरोपम का है और दूसर १० गुणस्थानों
का उ० अतर अर्ध पुद्गल परावर्त है ॥८४॥ पत्योपम उद्वार, अद्धा और
क्षेत्र एव ३ प्रकार के पत्योपम है ॥ ये अनुक्रम से बालाम प्रति समय
बालाम सो वर्ष मं । और बालाम का स्पर्श, अस्पर्श हुए आकाश
प्रदेशों को प्रति समय अपहरण करन क दृष्टा त से हाता है इनसे
द्रोप समुद्र, आयुष्य और व्रसादि जीवों की गिनती अनुक्रम से हाती है ।
विशेषता से इनके सूक्ष्म बादर कहके छे भेद भी किये हैं ॥८५॥ पुद्गल
परावर्त ॥ द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव त्रिपरिकृ चार प्रकार से पुद्गल
परावर्त इनको सूक्ष्म और बादर दो प्रकार से माने हैं । ये पत्यक अनत्
वत्सर्पिणि, अवसर्पिणी कालचक्र प्रमाण है । ॥८६॥ औदारिकादि सात
वर्गणा ॥ आहारक बिना के चौदह रात्रलोस्मं रहे हुए सर्व परमाणुओं को
औदारिकादि सातोंगणें एक जीव स्पर्श कर त्याग कर उस काल को स्थूल
द्रव्य पुद्गल परावर्त कहते हैं और सातों वर्गणा म का एकेक कीर्त भी
वर्गणा सव परमाणुओं को अनुक्रम से एकेक वर्गणावले परिणाम न त्याग
करे उस काल को सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्त कहत हैं ॥८७॥

लो^२ग^२प^२ग^२सो स^३पि^३णि स^३म^३या अ^४गु^४भा^४गं वं^४घ^४ठा^४णा^४य ॥
 ज^१ह^१त^१ह क^२म^२म^२र^२णे^२णं पृ^१ठा खि^१त्ता^१इ धू^२लि अ^२रा ॥८८॥
 अ^१प^१प^१य^१र प^२य^२डि^२वं धी उ^१क्क^१ड जौ^१गी^१य स^२न्नि प^२ज^२चो ॥
 कु^१ण^१इ प^१ए^१सु^१क^१सो^१स ज^१ह^१न्^१न^१यं त^१स्स व^१च्चा^१से ॥८९॥
 मि^१च्छ^१ अ^१ज^१य च^१ऊ^१आ^१ऊ वि^१ति गु^१ण^१वि^१णु मो^१हि स^१त्त मि^१च्छ^१इ ॥
 छ^१ण^१ह स^१त^१ग^१स सु^१हु^१मो अ^१ज^१या दे^१सा वि^१ति क^१सा^१ए ॥९०॥
 प^१ण अ^१न्नि अ^१ड्ढि सु^१ख^१ग^१इ न^१रा^१उ सु^१र सु^१भ^१ग ति^१ग वि^१उ^१च्चि दु^१गं ॥
 म^१म^१च उ^१र^१स^१म^१मा^१यं व^१इर मि^१च्छो^१व स^१म्भो^१वा ॥९१॥

क्षेत्रादि ३ पुद्गल परावर्त स्वरूप, लोकक्षेत्र के प्रदेश, उत्सर्पिणि
 अवसर्पिणि का समय और रमन्ध के स्थान जैसे जैसे (विना
 अनुक्रम) से स्पर्श और दूसरा अनुक्रम पूर्वक मर करके स्पर्श करे वह
 क्षेत्रादि बादर और सूक्ष्म पुद्गल परावर्त अनुक्रम से होता है ॥८८॥
 अल्पतरु प्रकृति का बांधने वाला जिसका सबसे उत्कृष्ट योग हो ऐसा
 सज्ञा पर्याप्त जीव उत्कृष्ट प्रदेश का बन्धक होता है और विपरितपते
 जघन्य प्रदेश बन्धक होता है ॥८९॥ प्रदेश बन्ध स्वामी मिथ्यादृष्टि
 और अविरति आदि चार (अवि० दे० प्र० अप्र०) गुणस्थानकवाले ।
 आयुष्य कर्म का उत्कृष्ट बन्ध करते हैं दूसरे और तीसरे गु० बिना
 मिथ्यात्वादि ७ (अनिवृत्ति पर्यन्त) गु० वाले मोहन्योय कर्मका, सूक्ष्म
 सपराय वाले छे मूत्र और उत्तर १७ प्र० का, अविरति दूसरे कषाय का
 और देशविरति तीसरे कषाय का उत्कृष्ट बन्ध करता है ॥९०॥ अनिवृत्ति
 बादर गु० वाला (पुरुषवेद सं० ७४) पांच प्रकृति का, और मिथ्यात्वी
 अथवा सम्यग्दृष्टि जीव शुभ विहायोगति, मनुष्यायु सुरत्रिक, सोभाग्य
 त्रिक वैक्रियद्विक, सम चतुस्रसंस्थान, असातावेदनी, और वज्ररूपभना-
 राच संश्रयण एनं १३ प्र० का उत्कृष्ट प्रदेश बंध मिथ्यात्वी या सम्यक्
 दृष्टि उत्कृष्ट योग से वरतता हुआ बांधे ॥९१॥

निदापयला दुजुग्रल भयकुच्छा तित्थ सम्मगो सुजई

आहार दुग सेमा उरकोम पणमगा मिच्छो ॥ ९२ ॥

सुमुणि दुग्धि अमन्नि निरयतिग सुराउ सुर भिउन्विदुग ॥

मन्मो जिण जमन्न सुहूमनिगो आइ सणीसेमा ॥ ९३ ॥

द सण छरु भयकुच्छाविति तुरिथ कमाय विग्घ नाणाण ॥

मूलछगे गुरकोमो चउह दुहासेमि सव्वय ॥ ९४ ॥

निशा प्रचला, टारय, युगत, भय, जुगुप्सा, का ३० प्र० बंध
 मन्मवत्त्व इष्टि ॥ आहारक द्विक का सुयति अर्थात् अप्रमत्त साधु
 और शेष ६६ प्र० का ३० प्रदेशध ध मिथ्याइष्टि जीव करते हैं
 ॥ ६० ॥ (जघन प्रदेशध भ्रामो बहूठ हैं) अप्रमत्त यति आ
 टारक द्विक को, अमनि पर्याप्त नरद्विक और देवायुग्य को,
 मन्यपरयइष्टि (तारकी देवता से पव व मनुष्यभव प्रथम समय)
 देवद्विक, धेनियट्टक और जिग ताम कर्म को ३० प्रदेशध से
 बाध और शेष १०६ प्र० को अप्रमत्ता भूत्तम निगोदये तीव उरपत्त
 प्रथम समय ३० प्रदेशध से बाधते हैं ॥ ६३ ॥ दशावट्टक
 (४६० दो निग) भय, जुगुप्सा, दुमरा, गीतरा, सीया कपाय,
 पाय अन्तराय, पाय तानाय० का और मोहनोय, आयुष्य कर्म वर्ण के
 शेष छे मूल प्रकृतियों के विषय अतुच्छट्ट प्रदेशध चार प्रकार
 (गार्हि, अत्तदि, भूप, अत्तद) से होता है । शेष तीन प्रकार के
 प्रदेशध विषय और बाधा रही हुई मर्ष प्रकृतियों के प्रदेशध
 विषय भयप्र दो भाग (गार्हि, अत्तद) से बंध होता है । जिसके
 १०६ भाग क्षाने हैं । सो मन्मवत्त्व अमत्त मेना ॥ ६५ ॥

सेढि असंखिज्जंसे जोग^१टाणाणि पयडि^२ ठिई^३ मेआ ॥

ठिई^४वंधज्झं वसायाणु भाग^५टाणा असंखगुणा ॥ ९५ ॥

वत्तो कम्मपएसा अणंतगुणिया तओ^६ रसच्छेआ ॥

जोगा पयडि पएसं ठिई अणुभगं कसायाओ ॥ ९६ ॥

चउदसरज्जूलोगो बुद्धिकओ सत्तरज्जूमाणघणो ॥

तदीहेग पएसो सेढी पयरो अ तव्वगो ॥ ९७ ॥

पूर्वोक्त योगस्थान सबधी सात बोल का अल्पावहुत्व कहते हैं । श्रेणी के असं० भाग अर्थात् घनीकृत सात राजकी लम्बी एक प्रदेश की आकाश श्रेणी उसके असं० भागमें जितने आकाश प्रदेश हो उतने योग स्थान वीर्य के सूक्ष्म विभाग हैं, स्वाप्रायोग्य सर्व जघन्य योग स्थान विषय जीव ज० १ समय उ० ४ समय तक रहता है । उत्कृष्ट योग स्थान विषय ज० १ उ० २ समय रहता है । मध्यम योग स्थानमे ज० १ उ० ८ समय तक रहता है । वे योग स्थान^१ असंख्याते हैं । इससे प्रकृति^२ भेद असं० गुणो, जिससे स्थिति^३ भेद, स्थिति बन्ध अध्यवसाय^४ स्थान और रसव^५न्ध के अध्यवसाय स्थान अनुक्रमसे असं० असं० गुण होते हैं ॥६५॥ इस से कर्म^६ प्रदेश अनन्त गुणो । इससे रसविभाग पल्लिच्छेद अर्थात् रस अविभाग के अणुवं अनन्त गुणो । (प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंधका हेतु कहते हैं) योगसे प्रकृति और प्रदेश बन्ध होता है, तथा कषायसे स्थिति और रसबन्ध हांता है, ॥ चोदह राज प्रमाण लोक है, ॥ उसको मति कल्पना से घन करने पर सात राज प्रमाण होता है, उस घनीकृत लोक प्रमाण लम्बी एक प्रदेश की श्रेणी को शुची श्रेणी कहते हैं, उस शुचि श्रेणी का वर्ग करने से प्रतर हांता है ॥६७॥

अणदस नपु सित्थी वेअच्छक्क च पुरिस वेअच ॥

दो दो एगतएण सग्गिसे सरिस उवसमैड ॥ ६८ ॥

अणमिच्छ मीस सम्म तिआउ इग विगल थीण तिगुजोअ ॥

तिरि^२ निरय थावर तुग साहारायवअड नपु सित्थी ॥ ९८ ॥

छग पुम सजलणा दोनिदा विग्धा वरण एण नाणी ॥

देविदसूरिलिहिअ सयगामिण आयसरणट्ठा ॥ १०० ॥ इति

(उपशम श्रेणी करने वाला) अन तानुबधी कपाय ४, दर्श
नमोहनाय ३ नपु सकवेद, स्त्रीवेद, हास्यादि षट्, पुरुषवेद और
एकेक मज्जल कपाय के अ तर दो दो दूसरे कपाय बराबरी के
अनुक्रम से उपशमावे ॥ ६८ ॥ स्थापना (क्षपक श्रेणोक करने वाला)
अन तानुबधी कपाय ४, दशन मोहनीय ३, आयुष्य ३, एकेन्द्रिय,
विकलेन्द्रिय, धिणद्धिात्रिक, उद्योतनाम, तिर्यच द्विक, नरक द्विक,
स्यावर द्विक साधारणनाम, आतपनाम, दूसरा तीसरा कपाय ८,
नपु सकवेद, स्त्रीवेद, ॥ ६६ ॥ हास्यादिषट्, पुरुषवेद, सज्वल कपाय
दो निद्रा पाच अतराय, नौ दर्शनावरणीय ज्ञय होने से केवली
होते हैं ॥ यह शतकनामा कर्मप्रथ अपनी आत्मा को मभालने के लिये
देवे द्रसूरिजी ने लिखा ॥ १०० ॥ इति



उपशमश्रेणी

उपशम यति

संज्वल लोभ २८

अप्र० लोभ २६

प्रत्या० लोभ २७

संज्वलमाया २५

अप्र० माया २३

प्रत्या० माया २४

संज्वलमान २२

अप्र० मान २०

प्रत्या० मान २१

संज्वलक्रोध १६

अप्र० क्रोध १७

प्रत्या० क्रोध १८

पुरुषवेद १६

हास्यादि षट्क १५

स्त्रीवेद ६

नपुंसकवेद ८

मिथ्या० मिश्र० सन्न्य० मोहनीय

१ २ ३ ७

अनुतानुबंधी क्रो० मा० मा० लो०

१ २ ३ ४

चपकश्रेणीयत्रम्

	<p>तत सिद्ध यति क्षययति १०८ १२ प्रकृति ७३ प्रकृति</p>	<p>१४ वे० गुणस्था० १३ वे० ॥</p>
--	--	--

ज्ञानाव० ५ दर्शना० ४ अंतराय० एव १४

	<p>निद्रा द्विक २ सञ्जल लोभ १ सञ्जल माया १ सञ्जल मान १ सञ्जल क्रोध १ पुरुष वेद १ हास्यादि षट् ६ स्त्रीवेद १ नपु सक वेद १ एकेन्द्रियादि १६ प्र०</p>	<p>१० वे० गुणस्था० १० वे० गुणस्था०</p>
--	---	---

अप्रत्या० क्रोध मान माया लोभ० प्रत्या० क्रोध मान माया लोभ ८

	<p>देव नारकी तीर्थचायु ३ सम्यकरय मोहनीय १ मिश्र मोहनीय १ मिश्र्यात्र मोहनीय १</p>	<p>४-५-६ ७ वे गुण स्थानकर्म</p>
--	--	---

अनन्तानुगन्धी क्रोध मान माया लोभ ४

श्री देवेन्द्रमूरीश्वरजी महाराज कृत पांचों कर्मग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद शा० लाधूरामजी तत् पुत्र मेघराज मुणोत फलौदी वाले ने स्वपरहित के लिये अपनी बुद्धि अनुसार पूर्वाचार्यों के ग्रन्थान्तर से उद्धृत कर संक्षेप से किया है। मति दोष से कहीं न्युनाधिक लिखा हो उसको सज्जन जन कृपा करके सुधार लेंगे। विक्रम संवत् १९८८? मिति श्रावण सुद् १५। शुभम् भवतु।



मेवध्वनि वर्षत हिय हर्षत है जग जीवन को सुखदाई ।
 घन ज्यू घोर मोर सुनि हर्षित तन मन अति ही हुलसाई ॥
 राजित वाजित सुरनर सेवित पद् कज रज को शीष चढाई ।
 जय जग जीवन नित हित चित धर वीर धीर को शीप नमाई ॥ १ ॥
 सुनि गण बीच सुशोभ दिवाकर कर्म विपाक जो दिय दिलाई ।
 नौ विधिब्रह्म कीर्ति यश छाजित, राजित सूरि देविन्द्र सदाई ॥
 तत्त्वज्ञान श्री कर्मग्रन्थ को शब्दार्थ किनो सुखदाई ।
 फलवृद्धि का सुहोय सदा जेहि ज्ञान रत्न को कठे ठाई ॥ २ ॥

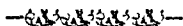
इति पांचों कर्मग्रन्थ हिन्दी सानुवाद समाप्त ।



॥अनमः सिद्ध ॥

श्री चन्द्रमहत्तराचार्य ऋत

सप्ततिका नामा षष्ठ कर्मग्रन्थ.



मगल और अभिषेक

मिद्वपणहिं महत्थ, गंधोदय सत पयडि ठाणाण ॥

बुच्छ मुण ससेर, नीसद दिटि वायम्म ॥ १ ॥

कइ गयतो वेअड, ऋड कइ वासत पयटि ठाणाणि ॥

मृलुत्तर पगडमु, भग त्रिगप्पा मुरे अन्ना ॥ २ ॥

मूल प्रकृति व गंधोदय सत्ता सवेध

अट्टविह मच छन्नघणु, अट्टवे उडय मतमा ॥

एगमिह त्रिगिगप्पो, एगमिगप्पो अन्नघमि ॥ ३ ॥

जीधम्यान विषय मूल प्रकृति भग

सत्तट गध अट्टदय, सततेरसमु जीवठाणेमु ॥

एगमि पन भंगो, दो भगो छु ति केरलिणो ॥४॥

गुणग्यान विषय भग

अट्टमुणक विगप्पो, छन्मुयि गुण मन्निणु दुगिगप्पो ॥

पनेअ पनेअ गंधोदय मंत कम्मार्ण ॥५॥

आठ कर्मों की उत्तर प्रकृति,

पंचनव दुनिह्वाविसा, चउरो तेहव वायाला ॥

दुन्निअ पंचय भणिया, पयडियो आण पुव्वीए ॥६॥

उत्तर प्रकृतियों का बंधोदय सत्तासंवेध.

बंधोदय संतंमा, नाणावरणंतराइए पंच ॥

बंधोवरमेवि उदय, संतं सा हुंति पंचेव ॥७॥

दर्शनावरणीय कर्म का गुणस्थान विषय बंधस्थानादि

बंधस्सय संतस्सय, पगइ ठाणाइ तिणि तुल्लाइ ॥

उदय ठाणाइ दुवे, चउपणगं दंसणावरणे ॥८॥

दर्शनाव० का गुणस्थान विषय संवेधबंध.

वीआ वरणो नव बंधएसु, चउ पंच उदय नव संता ॥

छच्चउबंधे चउ बंधुदए छलंसाय ॥९॥

उवरय बंधे चउपण, नवंस चउरूदय छच्चऊ संत ॥

वेअणि आउअ गोए, विभज्ज मोहं परं बुच्छं ॥१०॥

गोत्र वेदनीय और आयु कर्म के संवेधभंग.

गोअंमि सत्त भंगा, अडय भंगा हवंति वेअणिए ॥

पण नव नव पण भंगा, आउ चउके वि कमसो उ ॥११॥

मोहनोय कर्म का बंधस्थान.

वावीस इक्कीसा, सत्तसं तेर सेव नव पंच ॥

चउतिग दुगं चइवकं, बंधह्वाणाणि मोहस्स ॥१२॥

मोहनीय के नव उदयस्थान

एग व दोव चउरो, एतो एगाहिआ दसुककोसा ॥
ओहेण मोहणिज्जे, उदय ठाणाणि नव हु ति ॥ १३ ॥

मोहनीय के पन्द्रह सत्तास्थान

अद्वय मत्तय छच्चउ, तिगदुग एगाहिआ भवेवीसा ॥
तेरस चारिककारस, इत्तो पचाड एगूणा ॥ १४ ॥
मतस्म पयडि ठाणाणि, ताणि मोहस्स हु ति पन्नरम ॥
व धोदय सते पुण, भग विगप्पे चट्टजाण ॥ १५ ॥

मोहनीय के बधस्थान भग

अग्गवीम चउडग, वीसे मत्तरम तेरसे दो दो ॥
नव व धगे वि दुणिओ, इक्किक्क मओपर भगा ॥ १६ ॥

कौन ० से बधस्थानमें कितने ० उदयस्थान हैं

दम वावीसे नव इगवीसे, सत्ताड उदय कम्ममा ॥
छाड नव भतरसे, तेरे पचाड अट्टेव ॥ १७ ॥

नव प्रकृतिके बध भग

चत्तारि आड नव व ध एमु उक्कोम सत्तमुदयमा ॥
पचविह व धगे पुण, उदओ दुण्ह सुणे थओ ॥ १८ ॥

बधस्थान उदयस्थान

इतो चउव घाद इक्किक्कदया हवति सपेपि ॥
व धो चरमे विज्जा, उदया भावे विवा हुजा ॥ १९ ॥

उदय स्थानभंग

इक्कग छक्किककारस, दस सत चउक्क इक्कगं चव ॥
 एए चउवीसगया, वार दुगिक्कंमिक्कारा ॥ २० ॥
 (पाठान्तर) चउवीस दुगिक्क मिक्कारा ॥ २० ॥

इन भागोंकी विशिष्टपने सख्या और पद वृंदानि
 नवतेसीइसएहिं, उदयविगप्पेहिमोहिआ जीवा ॥
 अऊणुतरि सीआला, पयविंद सएहि विन्नेआ ॥ २१ ॥

मतान्तरे भंग सख्या और पद संख्यमाह

नवपंचाण उअसए, उदय विगप्पेहि मोहिआ जीवा ॥
 अउणुतरि एगुतरि, पयविंद सएहिं विन्नेआ ॥ २२ ॥

बंधस्थाने सत्तास्थान

तिन्नेवय वावीसे, इगवीसे अट्टवीससतरसे ॥
 छच्चेव तेरनवबंध एसु पंचेव ठाणाणि ॥ २३ ॥
 पंचविह चउविहेसु, छक्क सेसेसु जांण पंचेव ॥
 पतेअं पतेअं, चतारि अबंधवुच्छेए ॥ २४ ॥
 दस नव पन्नर साउ बंधोदय संत पयाडि ठाणाणि ॥
 भणिआणि मोहणिज्जे, इत्तीनामं परंबुच्छं ॥ २५ ॥

नामकर्मके बंधस्थान

तेवीस पण्णवीसा छव्वीसा अटवीस गुणतीसा ॥
 तीसेग तीसमेगं, बंध द्वाणाणि नामस्स ॥ २६ ॥

वधस्थानक विषय भग सत्या

चउपण वीक्षासोलस, नत्र नाण उईमया यञ्जडयाला ॥

ण्यालूत्तर छायाल मया इक्किरुक्किरु बवविहि ॥२७॥

नामकर्म के वारह उदयस्थान

मीसिगमिसा चउत्रीमगाउ एगाहिआ या इगतीसा ॥

उदय ठाणाणी भवे, नत्र अट्ठय हु ति नामत्स २८॥

उदयस्थाने मर्घ भग सत्या

इक्क विश्वालिककारस, तित्तिसा छस्सयाणि तित्तीसा ॥

वारम सत्तरस सयाणहिगाणि विपचसीईहि ॥२९॥

अउणत्ती सिक्कारस, मयाणि हिञ्च सत्तर पच मट्ठीहि ॥

इक्किरुगचमीम, दट्ठुदयतेसु उदय विहि ॥३०॥

नाम कर्म के सत्तास्थान

तिदुनउई गुण नउई, अटमी छलमी असीइ गुणमीई ॥

अट्ठय छप्पन्नत्तरि नत्रअट्ठय नाम सताणि ॥३१॥

नामकर्म का पधादय सत्तास्थान

अट्ठ यवारस वारस, बधोदय मत्र पयहि टाणाणी ॥

ओहेणाउण्सेणय जथ जहा समव विभ जे ॥३२॥

सामाचयने वधोदय सत्ता मवेध

नत्रपण्णोदय मता, तेमीसे पयमीस छन्वीसे ॥

अट्ठ चउरद वीसे नत्रमत्ति गुणतीमतीमम्मि ॥३३॥

गुणस्थाने मोहनीयकर्म बंधस्थान.

गुणठाणएसु अड्डसु, इक्किक्कं मोहवंधठाणं तु ॥

पंचा अनिअट्टिठाणे, बोधोवरमो परंततो ॥ ४८ ॥

गुणस्थाने मोहनीय कर्म उदयस्थान.

सत्ताइदम उमिच्छे, सामयणमीसए नवुक्कोसो ॥

छाइ नवउ अविरए, देसे पंचाइ अट्टेव ॥ ४९ ॥

विरए खओवत्तमिए, चउराइसत्त छच्च पुव्वमि ॥

अनि अट्टिवायरे पुण, इक्कोव दुवे व उदयंसा ॥ ५० ॥

एगं सुहुमसरागो, वेणइ अवेअगा भवे सेसा ॥

भगाणंच पमाणां, पुव्वुदिट्ठेण नायव्वं ॥ ५१ ॥

मोहनीयकर्म उदयस्थाने भगसख्या.

इक्कं छडिक्कारिक्कारसेव इक्कारसेव नवतिन्नि ॥

एए चउवीमगया, वारदुगेपंच इक्कमि ॥ ५२ ॥

सर्वभंग सख्या

वारस पण सट्टिमया, उदयविगप्पेहि मोहिआजीवा ॥

चुलसीई सत्तुतरि, पयविंदसएहि विन्नेआ ॥ ५३ ॥

गुणस्थाने मोहनीयकर्म उदयभग.

अट्टग चउ चउ चउरट्टगाय चउरो अहुंति चउवीसा ॥

मिच्छाइ पपुव्वंता, वारस पणागंच अनिअट्टी ॥ ५४ ॥

गुणास्थाने योगादिभग

जोगो व श्रोगलेसइहि गुणिश्रा हवति कायव्या ॥

जेजत्थगुणठाणे, हवति ते तत्थ गुणकारा ॥ ५५ ॥

गुणस्थान उदयपद

अद्वटीवत्तीस, वत्तीस सट्टिमेव वानन्ना ॥

चोअराल दोसु ग्रीसा, मिश्रमिच्छ माइमु सावन ॥ ५६ ॥

गुणस्थाने मोहनीयकर्म सत्तास्थान

तिन्नगे एगेग, तिगमीसे पच चउसु तिग पुव्वे ॥

इक्कार वयर मिउ, सुहमे चउ तिन्नि उवमते ॥ ५७ ॥

गुणस्थाने नामकर्म वधुदय सत्तास्थान

छन्नर छक्क तिगसत्त, दुगदुग तिग दुग तिअट्ठ चउ ॥

दुगद्वचउ दुगपण चउ चउदुगचउपणगणचउ ॥ ५८ ॥

एगेगमठ एगेगमट्ठ, छटमत्थ केवलि जिणाण ॥

एग चउ एग चउ, अद्व चउदुछक्कमुदय सा ॥ ५९ ॥

मि यात्वे वधभग

चउपणवीमासोलस, नर चत्तालामया य वाणउड ॥

वत्तीभुत्तर छायालमया, मिच्छस्म वधरिहि ॥ ६० ॥

भारवादाने वधभग

अत्तमया चाउमट्ठी, वत्तीवमपाड मासाणे भेया ॥

अत्तपीमाइसु, मव्वाणउट्ठिगद्वन्नउड ॥ ६१ ॥

मिथ्यात्वगुणस्थाने उद्यभंग.

इगचत्तिगारवत्तीम, ल्मय इगतीसद्गार नवनउइ ॥
सतरिगसिगुतीस चउदइगार चउसट्टिमिच्छुदया ॥ ६२ ॥

साध्यादन गुणस्थाने उद्यभंग.

वत्तीम दृग्निग्रट्ठय, वासीइ सयायपंचनव उदय ॥
वारऽहिआ तेवीसा वावन्निककारससयाय ॥ ६३ ॥

जतिमार्गणा विपयनामकर्म्म के वधुदय सत्तास्थान.

दोळ्ळककूट्टचउक्क, पणनवइक्कारळ्ळक्कगं उदया ॥
नेरइ आइसुसत्ता, तिपंचइक्कारस चउक्कं ॥ ६४ ॥

जतिमार्गणाए वधुदय सत्तास्थान.

इगविगलिंदिअ सगले, पणपंचय अट्टवंधठाणाणं ॥
पणळ्ळक्किक्कारुदया, पण पणवारसय संताणि ॥ ६५ ॥
इअ कम्पपगइठणाणि सुट्टुवंधुदयसंत कम्माणं ।
गइअइएहि अट्टसु, चउप्पयारेणनेआणि ॥ ६६ ॥
उदयस्सुदीरणाए, मामित्तओ न विवज्जइ विसेसो ॥
मुत्तूणय इगयालं, सेसाणं सब पयडीणं ॥ ६७ ॥
नाणंतरायदसगं, दसशानववेअणिज्ज मिच्छत्तं ॥
मग्गत्तलोभवेआउआणि नव नाम उच्चं च ॥ ६८ ॥

गुणस्थाने षडप्रकृति

तित्थयराहारग निरहिश्चाउ, अज्जइसव्व षयडीओ ॥
 मिच्छत्तवेअगो सासाणोनि गुणवीससेसाओ ॥६९॥
 छायाल सेसमीम अविरय समो तिआल परिसेसा ॥
 तेअन्न देम विरओ, निरओ सगवन्नसेमाओ ॥७०॥
 अगुणट्टिमप्पमतो, वधइ देवाउ अस्स इअरो नि ॥
 अट्ठाअन्नमपूअो, छप्पन्नवावि छवीस ॥७१॥
 वानीमाएगुण, नधइ अट्ठारसतमनिअट्ठी ॥
 सतरमुहुममरागो, मायममोहो सजोगुत्ति ॥७२॥
 एसोउवध सामित्त ओहो गइ आइएमु पि तहेव ॥
 ओहाओ साहिज्जइ जत्थ लहा पगइ सव्वभाओ ॥७३॥
 तित्थयरदेव निरयाउअच, तिसुत्तिउगइमु षोधन्न ॥
 अवसेमा षयडीओ, हवति सव्वाए वि गइसु ॥७४॥

अपशमश्रेणी स्वरूप

षट्ठमकसाय चउक्क, द सण तिग सत्तगा णि उअसता ॥
 अरिरयमम्मताओ, जाअनिअट्ठिट्ठति नायव्वा ॥७५॥
 सतट्ठ नवय पनरस, सोमस अट्ठारसेवगुणवीसा ॥
 एगोहि दु चउवीसा, पणवीसा वायरे जाण ॥७६॥
 मत्तानीस सुहुमै, अट्ठानीसच मोह षयडीओ ॥
 उअसतनीअराण, उअसता हु तिनायव्वा ॥७७॥

ज्ञपकश्रेणी.

पढमकसाय चउक्कं, इत्तोमिच्छत्त मीमसम्मत्तं ॥
 अविरय सम्मे देसे, पमत्ति अपमत्ति खीअंत्ति ॥७८॥
 अनिअट्ठिवायरे थीणगिद्धि तिग निरय तिरिअ नामाओ ॥
 संखिज्जइमेसेसे, तप्पाउग्गाओ खीअंत्ति ॥७९॥
 इत्तोहणइ कसायट्ठगंपि पच्छा नपुंसगं इत्थि ॥
 तो नोकसायछक्कं, छुहइ संजलण कोहंमि ॥८०॥
 पुरिसं कोहे कोहं, माणे माणंच छुहइ मायाए ॥
 मायंच छुहइ लोभे, लोहं सुद्धमं पि तो हणइ ॥८१॥
 खीण कसाय दुचरिमे, निदं पयलंच हणइ छउमत्थो ॥
 आवरणमंतराए, छउमत्थो चरम समयंमि ॥८२॥
 देवगइ सहगयाओ, दुचरम समयं भविअंमि खिअंत्ति ॥
 सविवागे अरनामा, नीआगोअंपि तत्थेव ॥८३॥
 अन्नयरवेयणीअं, मणुआउअ मुच्चगोअनवनामे ॥
 वेएइ अजोगिजिणो, उक्कांस जहन्नमिक्कारा ॥८४॥
 मणुगइ जाइतसवायरच पज्जत्त सुभगमाइज्जं ॥
 जसकित्ति तित्थयरं, नामत्स हवंति नवएआ ॥८५॥

मतांतरगाथा

तच्चाणु उव्विसहिआ, तेरसभवसिद्धिअस्म चरमंमि ॥
 संतंसग मुक्कोसं, जहन्नयं वारस हवंति ॥८६॥

मणुग्रगड सहगयथो भवखित्तपिनाग जिअविवाथो ॥
 वेअणि अन्नयत्तच, चरम ममयमि सीयति ॥८७॥
 अहसुडअ मयल जगमिहरमरुअ निरुपमसहाय सिद्धिसुह ॥
 अनिहण मव्यामाह, तिरयण सार अणुडवति ॥८८॥

उपसहार

दुरहिगम निउण परमत्थ रुइर बहुभगदिद्धिमायाथो ॥
 अत्था अणुपरिअन्ना, उवोदय मतकम्माण ॥८९॥
 जोजत्थ अपडिपुन्नो, अत्थो अप्पागमेण वधोति ॥
 त खमिऊण बहुसुआ, पूरेऊण परिफहत्तु ॥९०॥
 गाहग सयरीए, चदमहत्तरमयाणु सारीए ॥
 टीगाह निअमिअण, एगूणा होड न उइओ ॥९१॥ इति

इति सप्ततिकारयः षष्ठः कर्मग्रन्थ
 सपूर्णः